श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

श्रीहरिनाम महामंत्र

[महामंत्रका क्रम, ऐश्वर्य और माधुर्यमयी व्याख्याएँ,
हरिनामकी महिमा, हरिनाम ग्रहणकी प्रणाली और
हरिनाममें अपराधका विचार समन्वित]

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी
श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय
दशमाधस्तनवर श्रीगौड़ीयाचार्यकेशरी
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीचरणके

अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज
द्वारा संग्रहीत एवं सम्पादित

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

प्रकाशक—

श्रीमान् पुरन्दर दास ब्रह्मचारी
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
मथुरा (उ॰ प्र॰)

प्रथम संस्करण—

श्रीशरदीय पूर्णिमा, श्रीगौराब्द ५१४
१३ अक्टूबर २००० (सम्वत् २०५७)

प्राप्ति स्थान—

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरीपाड़ा, पो॰ नवद्वीप, नदीया (प॰ बं॰)
२. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ॰ प्र॰) ✆ ४०९४५३
३. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, चुँचुड़ा, हुगली (प॰ बं॰)
४. श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन (उ॰ प्र॰) ✆ ४४३२७०
५. श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ, राणापत घाट, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)
६. श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, यमुनापार, मथुरा (उ॰ प्र॰) ✆ ४५०५१०
७. श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उ॰ प्र॰)
८. श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ, स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)
९. श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ, २८, हालदार बागान लेन, कलकत्ता-४
१०. श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, ग्वालपाड़ा, धूबड़ी (आसाम)
११. श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ, बामपाड़ा, कूचबिहार (प॰ बं॰)
१२. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र, रान्दियाहाट, जिला-बालेश्वर (उड़ीसा)
१३. श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शक्तिगढ़, शिलिगुड़ी, जिला-दार्जिलिङ्ग (प॰ बं॰)
१४. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, आशुतियाबाड़ मेदिनीपुर (प॰ बं॰)
१५. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ, सिधाबाड़ी, रूपनारयणपुर, जिला-वर्द्धमान (प॰ बं॰)
१६. श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो॰ वासुगाँव, जिला-कोकड़ाझार (आसाम)
१७. श्रीमेघालय गौड़ीय मठ, तुरा, वेस्ट गोरा हिल्स (मेघालय)
१८. श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ, मिलनपल्ली, शिलिगुड़ी (दार्जिलिङ्ग)
१९. श्रीमदनमोहन गौड़ीय मठ, माथाभाङ्गा, जिला-कूचबिहार (प॰ बं॰)
२०. श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठ, चैतन्य एवेन्यु, पो॰ दुर्गापुर (प॰ बं॰)

श्रीहरिनाम महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

वेद, उपनिषद, पुराण और संहिता आदि सात्वत-शास्त्रोंके अनुसार कलियुगका महामंत्र तथा तारक ब्रह्म नाम है—"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।" इस सोलह हरिनामात्मक महामंत्रका संकीर्तन कलियुगका मुख्य धर्म है। भगवान्‌का 'नाम' साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है। भगवान् श्रीकृष्णने अपने स्वरूपके पूर्ण मधुर रूप, समस्त गुणों, मधुर लीलाओं तथा कृपा आदि समस्त शक्तियोंको इन नामोंमें पूर्णरूपसे भर दिया है। यद्यपि भगवन् 'नाम' और भगवत्स्वरूप 'नामी' ये दोनों सर्वथा अभिन्न हैं, इनमें कोई भेद नहीं है, तथापि किसी-किसी विषयमें नामी-ब्रह्मकी अपेक्षा नाम-ब्रह्मकी कृपा अधिक बतलायी गयी है। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण ही मायाबद्ध जीवोंका उद्धार करनेके लिये अपनी अहैतुकी कृपासे 'नाम' के रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। अतएव सौभाग्यवान् जन श्रीहरिनाम परायण सद्गुरुके द्वारा श्रीहरिनाम महामंत्रकी दीक्षा ग्रहण कर उसका संकीर्तन, संख्यापूर्वक कीर्तन, उपांशु जप और स्मरण आदिके द्वारा भगवद् आराधना करते हैं। शास्त्रोंके अनुसार कलियुगमें नाम-स्मरण या उपांशु-जपकी अपेक्षा उच्चस्वरसे नामसंकीर्तनकी महिमा अधिक बतलायी गयी है।

जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।
आत्मानञ्च पुनात्युच्चैर्जपन् श्रोतॄन् पुनाति च।।

(श्रीनारदीय, प्रह्लाद वाक्य)

हरिनाम जप-परायण व्यक्तिकी अपेक्षा उच्चस्वरसे हरिनाम-कीर्तनकारी सौगुना श्रेष्ठ है, यह बात सम्पूर्ण ठीक है, क्योंकि जपकारी व्यक्ति अपनेको ही पवित्र करते हैं, किन्तु उच्चस्वरसे नाम कीर्तनकारी अपनेको और उसके साथ श्रोताओंको भी पवित्र करते हैं। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष, लता, गुल्म तक भी, जो बोल नहीं सकते, वे भी हरिनामको श्रवणकर भवसागरसे तर जाते हैं।

अतः कलिकालमें सोलह हरिनामात्मक महामंत्रका संकीर्तन ही समस्त साधनोंका शिरोमणि है। कलियुग-पावनावतारी श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी सदा-सर्वदा श्रीहरिनाम संकीर्तन करनेका उपदेश दिया है—"कीर्तनीयः सदा हरिः।।" बृहन्नारदीय पुराणमें जोर देकर कहा गया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

महामंत्रका क्रम

कुछ लोगोंका कहना कि महामंत्र "हरे राम" से आरंभ करना चाहिए। उनकी युक्तियाँ ये हैं—(१) वेंकटेश प्रेस मुम्बईसे छपे हुए कलिसंतरणोपनिषद्में यह महामंत्र "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।" इस प्रकार छपा है। (२) 'कल्याण' गोरखपुरमें भी ऐसा ही क्रम देखा जाता है। (३) त्रेतायुगमें श्रीरामजीका और पीछे द्वापरयुगमें श्रीकृष्णका आविर्भाव होनेके कारण पहले 'हरे राम' और पीछे 'हरे कृष्ण' का रहना ही युक्तिसंगत है।

उपर्युक्त शंका या युक्तियाँ सम्पूर्णरूपसे निराधार हैं। वेंकटेश प्रेस मुम्बईके छपे हुए कलिसंतरणोपनिषद्से पूर्वके संस्करणोंमें यह महामंत्र 'हरे कृष्ण' से ही प्रारंभ देखा जाता है। कलकत्ते और जयपुरके पुराने पुस्तकालयोंमें ये ग्रन्थ संरक्षित है।

दूसरी बात गोरखपुर गीताप्रेससे प्रकाशित कल्याण इस विषयमें प्रामाणिक आधार नहीं है। तीसरी बात त्रेतायुग पहले है तथा द्वापरयुग पीछे है, इस क्रमका प्रभाव इस सनातन नित्य महामंत्र पर नहीं पड़ता। ये महामंत्र युगातीत या कालातीत है।

इस विषयको प्रतियुगोंके तारक ब्रह्म-महामंत्रोंके द्वारा समझा जा सकता है। अनन्त संहितामें इसका उल्लेख पाया जाता है—

सत्ययुगका—**नारायण परावेदाः नारायण पराक्षराः।**
नारायण परामुक्तिः नारायण परागतिः।।

त्रेतायुगका—**रामनारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।**
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन।।

द्वापरयुगका—**हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।**
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष।।

कलियुगका—**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।**
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

षोड़शैतानि नामानि द्वात्रिंशद् वर्णकानि हि।
कलौयुगे महामंत्रः सम्मतोजीवतारणे।।

(अनन्त संहिता)

अर्थात् श्रीकृष्णावतारसे पूर्व त्रेतायुगके तारक ब्रह्म नाम-मंत्रमें भी मुकुन्द, मधुसूदन, कृष्ण, केशव कंसारि ये कृष्णनाम देखे जाते हैं। अतः प्रस्तुत महामंत्रके क्रममें परिवर्तन करनेमें कोई तर्क या युक्ति उचित नहीं है।

अनन्त-संहिताके इन श्लोकोंमें स्पष्टरूपसे यह निर्देश दिया गया है कि कलिसन्तरण आदि उपनिषदोंमें, महामंत्रमें "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"—यह क्रम लिखा है। दूसरी बात, यह महामंत्र गुरुपरम्परामें श्रीनारदजीने अपने गुरु श्रीब्रह्माजीसे प्राप्त किया था। यह नियम श्रीब्रह्म-माध्व-गौडीय-वैष्णव-परम्परामें आज भी प्रचलित है। दूसरे सम्प्रदायोंमें यह महामंत्र गुरुपरम्परासे प्राप्त नहीं होता। अतः इसका रहस्य और क्रम दूसरे सम्प्रदायोंको प्राप्त नहीं है। इसीलिये वे इस क्रमको परिर्वतन कर हरे रामसे ही इसका प्रारम्भ करते हैं तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

विभिन्न प्रामाणिक शास्त्रोंमें इस महामंत्रका स्वरूप जिस प्रकारसे निर्द्दिष्ट हुआ है, उसके प्रमाणोंका नीचे उल्लेख कर रहे हैं—

ज्ञानामृतसारमें कहा है कि—

"शिष्यस्योदङ् मुखस्थस्य हरेर्नामानि षोडश।
संश्राव्यैव ततो दद्यान्मंत्रं त्रैलोक्यमङ्गलम्।।"

उत्तरकी ओर मुख करके बैठे हुए शिष्यके दक्षिण कानमें, श्रीहरिके 'हरे कृष्ण' इत्यादि, सोलह नामोंको प्रदान (श्रवण करा) कर ही, गुरुदेवको शिष्यके लिये, त्रैलोक्य-मङ्गलकारक 'गोपालमंत्र' की दीक्षा देनी चाहिए।

ब्रह्मयामल नामक ग्रन्थमें शिवजीके वाक्यमें, 'महामंत्र' का स्वरूप इस प्रकार लिखा है—

"हरिं विना नास्ति किञ्चित् पापनिस्तारकं कलौ।
तस्माल्लोकोद्धारणार्थं हरिनाम प्रकाशयेत्।।
सर्वत्र मुच्यते लोको महापापात् कलौ युगे।।

हरेकृष्णपदद्वन्द्वं कृष्णेति च पदद्वयम्।
तथा हरेपदद्वन्द्वं हरेराम इति द्वयम्।।
तदन्ते च महादेवि! राम राम द्वयं वदेत्।
हरे हरे ततो ब्रूयाद् हरिनाम समुद्धरेत्।।
महामंत्रं च कृष्णस्य सर्वपापप्रणाशकमिति।।"

हे महादेवि! देखो, कलियुगमें श्रीहरिनामके बिना कोई भी साधन, सरलतासे पापोंसे छुटकारा नहीं दिला सकता है, अतः सर्वसाधारण लोगोंका उद्धार करनेके लिए, श्रीहरिनामको ही प्रकाशित करना आवश्यक है। कलियुगमें 'महामंत्र' का संकीर्तन करनेसे सभी लोग महापातकोंसे भी सहज ही विमुक्त हो सकते हैं। 'महामंत्र' में पहले 'हरे कृष्ण' 'हरे कृष्ण' ये दो पद बोलना चाहिये। उसके बाद 'कृष्ण' 'कृष्ण' ये दो पद, तथा 'हरे' 'हरे' ये दो पद बोलना चाहिये। उसके पश्चात् 'हरे राम' 'हरे राम' ये दो पद तथा 'राम' 'राम' ये दो पद, तदनन्तर 'हरे' 'हरे' इन दो पदोंको बोलकर, सर्वपापविनाशक श्रीकृष्णके 'महामंत्र' का संकीर्तन, उच्चारण, जप आदि करना चाहिये।

राधातंत्रमें कहा गया है—

"शृणु मातर्महामाये! विश्वबीजस्वरूपिणि!।
हरिनाम्नो महामाये! क्रमं वद सुरेश्वरि!।।"

कोई भक्त प्रार्थना कर रहा है कि हे विश्वबीजस्वरूपिणि! सुरेश्वरि! महामाये! मातः! मेरी प्रार्थना सुनिये। कृपया श्रीहरिनाम 'महामंत्र' का क्रम मुझे बतलाएँ।

देवीने उस भक्तको महामंत्रका क्रम इस प्रकार बतलाया—

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
द्वात्रिंशदक्षराण्येव कलौ नामानि सर्वदम्।
एतन्मंत्रं सुतश्रेष्ठ! प्रथमं शृणुयान्नरः।।"

हे पुत्रश्रेष्ठ! सर्वसिद्धिप्रद 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' इत्यादि सोलह नाम, बत्तीस अक्षरवाले श्रीकृष्णनामको ही कलियुगमें 'महामंत्र' कहा गया है। अतः अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको, श्रीगुरुदेवके द्वारा, पहले उन्हींका श्रवण करना चाहिए।

उसी राधातंत्रमें त्रिपुरादेवीने भी ऐसा निर्देश दिया है—

"हरिनाम्ना विना पुत्र! दीक्षा च विफला भवेत्।
गुरुदेवमुखाच्छ्रुत्वा हरिनाम पराक्षरम्।।

ब्राह्मण–क्षत्र–विट्–शूद्राः श्रुत्वा नाम पराक्षरम्।
दीक्षां कुर्युः सुतश्रेष्ठ! महाविद्यासु सुन्दर!।।"

हे पुत्रश्रेष्ठ! तुम महाविद्याओंके ज्ञानमें पारंगत हो। देखो! गुरुके मुखसे 'हरे कृष्ण' इत्यादि हरिनामात्मक 'महामंत्र' श्रवणके बिना, श्रीगोपालमंत्र आदि की दीक्षा निष्फल हो जाती है; अतः ब्राह्मण–क्षत्रिय आदि चारों वर्णके व्यक्तियोंको, श्रीगुरुदेवके मुखसे 'महामंत्र' को श्रवण (ग्रहण) कर ही, श्रीगोपालमंत्र आदि मंत्रोंकी दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

पद्मपुराणमें भी कहा गया है कि—

"द्वात्रिंशदक्षरं मंत्रं नामषोडशकान्वितम्।
प्रजपन् वैष्णवो नित्यं राधाकृष्णस्थलं लभेत्।।"

सोलह नामोंसे युक्त बत्तीस अक्षरवाले 'हरे कृष्ण' इत्यादि 'महामंत्र' को, नित्य जप करनेवाला वैष्णव, श्रीराधाकृष्णके गोलोक–वृन्दावनधामको प्राप्त कर लेता है।

देखो, ब्रह्माण्डपुराणमें राधाहृदयखण्डमें, श्रीवेदव्यासजीके प्रति रोमहर्षणसूतकी प्रार्थना इस प्रकार है—

"यत्त्वया कीर्तितं नाथ! हरिनामेति संज्ञितम्।
मंत्रं ब्रह्मपदं सिद्धिकरं तद् वद नो विभो!।।"

हे विभो! हे प्रभो! आपने श्रीहरिनामात्मक ब्रह्मस्वरूप एवं सिद्धिप्रद जो मंत्र कहा है, उसका स्वरूप मुझे उपदेश करें।

इसके उत्तरमें श्रीवेदव्यासजीने इस प्रकार उपदेश दिया—

"ग्रहणाद् यस्य मंत्रस्य देही ब्रह्ममयो भवेत्।
सद्यः पूतः सुरापोऽपि सर्वसिद्धियुतो भवेत्।
तदहं तेऽभिधास्यामि महाभागवतो ह्यसि।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
इति षोडशकं नाम्नां त्रिकालकल्मषापहम्।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु विद्यते।।"

देखो पुत्र! जिस मंत्रके ग्रहणसे देहधारी प्राणी ब्रह्ममय हो जाता है, एवं मद्य पान करनेवाला व्यक्ति भी तत्काल पवित्र होकर सब सिद्धियोंसे युक्त हो जाता है, उस महामंत्रका उपदेश मैं तुम्हें अवश्य प्रदान करूँगा; क्योंकि तुम योग्यपात्र महाभागवत हो। देखो, 'हरे कृष्ण' इत्यादि सोलह नामोंवाला

'महामंत्र', त्रैकालिक-पापोंको विनष्ट करनेवाला है। चारों वेदोंमें इस 'महामंत्र' से परे, संसारसे पार होनेका, कोई भी श्रेष्ठ उपाय नहीं बताया है।

अनन्तसंहितामें भी कहा गया है कि—

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
षोडशैतानि नामानि द्वात्रिंशद्वर्णकानि हि।
कलौ युगे महामंत्रः सम्मतो जीवतारणे।।
उत्सृज्यैतन्महामंत्रं ये त्वन्यत् कल्पितं पदम्।
महानामेति गायन्ति ते शास्त्रगुरुलङ्घनः।।"

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' इत्यादि बत्तीस वर्णोंवाले सोलह नाम ही, कलियुगमें जीवोंके उद्धारके लिए सर्वलोकशास्त्रसम्मत 'महामंत्र' के नामसे विख्यात हैं। अतः जो लोग, इस 'महामंत्र' को छोड़कर, अपने अथवा दूसरोंके द्वारा कल्पित किसी दूसरे पदको, महामंत्रके नामसे कीर्तन करते हैं, वे लोग शास्त्र एवं गुरुजनोंका उल्लङ्घन करनेवाले हैं। यदि कोई पूछे कि 'हरे कृष्ण' इत्यादि सोलह नामोंवाले मंत्रको ही 'महामंत्र' क्यों कहते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि भगवान् श्रीकृष्णके समस्त नामोंमें 'हरि'-नामके समान आसन्न पापों, संकटों, अविद्या आदिको हरण करनेवाला, 'कृष्ण'-नामके समान प्रेमदाता और 'राम'-नामके समान मुक्तिदाता (भव-तारक) दूसरे नाम नहीं हैं। इस महामंत्रमें इन तीनों मुख्यनामोंका समावेश है। दूसरी बात यह है कि ये सोलह नाम सम्बोधनात्मक हैं, इनमें नमः, ॐ, क्लीं, स्वाहा आदि पदोंका समावेश न होनेके कारण इसको महामंत्र कहते हैं।

सनत्कुमारसंहितामें भी कहा गया है—

"हरेकृष्णौ द्विरावृत्तौ कृष्ण तादृक् तथा हरे।
हरे राम तथा राम तथा तादृक् हरे पुनः।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"

अर्थात् पहले 'हरे कृष्ण' दो बार, पुनः 'कृष्ण' दो बार, तदनन्तर 'हरे' दो बार आवृत्ति करे; तदनन्तर 'हरे राम' दो बार, पुनः 'राम' दो बार और तदनन्तर 'हरे' दो बार आवृत्ति करे। ऐसा करनेसे महामंत्र हुआ— हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

देखो यजुर्वेदीय-कलिसन्तरणोपनिषद्में भी 'महामंत्र' का स्वरूप और माहात्म्य इस प्रकार बतलाया गया है—

"हरिः ॐ।। द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम, कथं भगवन्! गां पर्यटन् कलिं सन्तरेयमिति। स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छ्रृणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति। नारदः पुनः पप्रच्छ। तन्नाम किमिति? स होवाच हिरण्यगर्भः—"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।" इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते।। इति षोडशकलावृतस्य जीवस्य आवरणविनाशनम्। ततः प्रकाशते परंब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति। पुनर्नारदः पप्रच्छ। भगवन्! कोऽस्य विधिरिति? स होवाच नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्रह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति।

द्वापरके अन्तमें नारदजी श्रीब्रह्माके निकट गए और प्रणाम करके बोले कि भगवन्! भूतलपर भ्रमण करता हुआ मैं कलिकालको किस प्रकार पार कर सकूँगा? ब्रह्मा बोले—हे पुत्र! बहुत अच्छा प्रश्न किया। सभी वेदोंका गोपनीय जो रहस्य है उसको सुनो, जिसके द्वारा कलिरूप-संसारसे अनायास ही तर जाओगे। आदिपुरुष भगवान् श्रीमन्नारायण (कृष्ण) के नामोच्चारणमात्रसे ही, कलियुग विशेष रूपसे काँपने लगता है। नारदजीने पुनः पूछा कि वह नाम कौनसा है? उसका स्वरूप क्या है? इसके उत्तरमें ब्रह्माजी बोले कि—"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।। इस प्रकार सोलह नोमोंवाला यह जो 'महामंत्र' है, वह कलिके कल्मषोंको सम्पूर्णरूपसे विनष्ट करनेवाला है। सभी वेदोंमें इससे श्रेष्ठ और कोई भी साधन नहीं दीखता है। यह मंत्र षोडशकलाओंसे आवृत अर्थात् पञ्चभूत एवं ग्यारह इन्द्रियोंके आवरणसे युक्त जीवके आवरणको विनष्ट करनेवाला है। उसके पश्चात् तो जीवके सामने, परब्रह्म उसी प्रकारसे प्रकाशित हो जाते हैं जैसे बादलोंके विनष्ट होनेपर सूर्यकी किरणोंका समुदाय प्रकाशित हो जाता है। नारदजीने पुनः पूछा कि भगवन्! इस 'महामंत्र' के जपकी विधि कौनसी है? ब्रह्माजी बोले—इसकी कोई विधि नहीं है। पवित्र अथवा अपवित्र किसी भी अवस्थामें कोई भी व्यक्ति, इस 'महामंत्र' का स्पष्ट उच्चारण करता हुआ, ब्रह्मकी सलोकता-समीपता-सरूपता एवं सायुज्यताको आनुषंगिकरूपसे प्राप्त हो जाता है। केवल इतना ही नहीं;

किन्तु मुख्यरूपसे तो पञ्चम पुरुषार्थ श्रीकृष्णप्रेमपर्यन्त प्राप्त कर लेता है (चै. च. आ. ७/८३-८६; म. २५/१४७, १९२; अ. ३/१७७; अ. ७/१०४; अ. २०/११)।

श्रीभक्तिचन्द्रिकाके सप्तम पटलमें कहा है कि—

अथ मंत्रवरं वक्ष्ये द्वात्रिंशदक्षराऽन्वितम्।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुर्वासनाऽनलम्।।
चतुर्वर्गप्रदं सौम्यं भक्तिदं प्रेमपूर्वकम्।
दुर्बुद्धिहरणं शुद्धसत्त्वबुद्धिप्रदायकम्।।
सर्वाराध्यं सर्वसेव्यं सर्वेषां कामपूरकम्।
सर्वाधिकारसंयुक्तं सर्वलोकैकबान्धवम्।।
सर्वाकर्षणसंयुक्तं दुष्टव्याधिविनाशनम्।
दीक्षाविधिविहीनं च कालाकालविवर्जितम्।
वाङ्मात्रेणार्चितं बाह्यपूजाविध्यनपेक्षकम्।
जिह्वास्पर्शनमात्रेण सर्वेषां फलदायकम्।
देशकालाऽनियमितं सर्ववादिसुसम्मतम्।।१।।

यह 'महामंत्र' बत्तीस अक्षरोंसे युक्त है; समस्त पापोंका नाशक है, सभी प्रकारकी दुर्वासनोंको जलानेके लिए अग्निस्वरूप है, धर्म-अर्थ-काम-मोक्षको देनेवाला है, सुन्दर स्वरूपवाला है, प्रेमलक्षणाभक्तिको देनेवाला है, दुर्बुद्धिको हरनेवाला है, शुद्धसत्त्वरूप भगवद्वृत्तिवाली बुद्धिको देनेवाला है, सभीका आराधनीय सेवनीय है, सभीकी कामनाओंको पूरी करनेवाला है, सभीके अधिकारसे युक्त है, अर्थात् 'महामंत्र' के संकीर्तनमें सभीका अधिकार है; यह मंत्र, सभीका मुख्य बान्धव है, सभीको आकर्षण करनेकी शक्तिसे युक्त है, दुष्टव्याधियोंका विनाशक है, दीक्षा विधि आदिकी अपेक्षासे रहित है, समयके प्रतिबन्धसे रहित है, वाणीमात्रसे पूजित होने योग्य है, बाह्य पूजा विधिकी अपेक्षा नहीं करता है, सभीको केवल जिह्वाके स्पर्शमात्रसे फलदायक है, देश काल आदिके नियमसे विमुक्त है; अतः सर्ववादीजनके द्वारा सुसम्मत है।।१।।

और देखो, अथर्ववेदकी पिप्पलाद-शाखामें कहा है कि—

स्वनाम-मूलमंत्रेण सर्वं ह्लादयति विभुः स एव मूलमंत्रं जपति हरिरिति कृष्ण इति राम इति।

सर्वावतारी प्रभु श्रीकृष्ण अपने नामरूप-मूलमंत्रके द्वारा सबको आह्लादित करते रहते हैं, एवं वे ही श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुके रूपसे, 'हरे कृष्ण' इत्यादि स्वरूपवाले मूल महामंत्रको स्पष्ट उच्चारण करते रहते हैं। महामंत्रके कीर्तन आदिका फल इस प्रकार कहा गया है—

मंत्रो गुह्यः परमो भक्तिवेद्यः नामान्यष्टावष्ट च शोभनानि।
तानि नित्यं ये जपन्ति धीरास्ते वै मायामतितरन्ति नान्ये।।
परमं मंत्रं परमरहस्यं नित्यमावर्तयति।

'महामंत्र' परमगुह्य है एवं भक्तिके द्वारा ही जाना जा सकता है। उसमें 'हरे कृष्ण' इत्यादि एवं 'हरे राम' इत्यादि परम मनोहर आठ-आठ नाम हैं, अतः जो बुद्धिमान् व्यक्ति उन नामोंका नित्य जप करते हैं वे मायासे अवश्य ही विमुक्त हो जाते हैं, दूसरे नहीं। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष 'महामंत्र' का कीर्तन, स्मरण और जप सदा-सर्वदा किया करते हैं।

ब्रह्माण्डपुराण उत्तरखण्डके छठे अध्यायमें यह उल्लेख किया गया है कि वृषभानुराजाने क्रतुमुनिसे प्रार्थना की कि हे भगवन्! यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है, तो मेरे लिए हरिनामोंका दान कीजिए। उस समय महात्मा क्रतुमुनिने उनको 'हरे कृष्ण' इत्यादि सोलह नामोंको प्रदान किया। अतः बुद्धिमान् व्यक्तिको इसी 'महामंत्र' का संकीर्तन, सदा-सर्वदा करते रहना चाहिए—'नामसंकीर्तनं तस्मात् सदा कार्यं विपश्चिता।'

श्रीचैतन्य महाप्रभु और महामंत्र

श्रीहरिनामसंकीर्तनके प्रवर्तक श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी भक्तोंके प्रति 'महामंत्र' के संकीर्तनका ही उपदेश दिया है। श्रीवासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्यने भी कहा है कि—

विषण्णचित्तान् कलिघोरभीतान्, संवीक्ष्य गौरो हरिनाममंत्रम्।
स्वयं ददौ भक्तजनान् समादिशत्, संकीर्तयध्वं ननु नृत्यवाद्यैः।।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने कलिकालसे विशेष भयभीत एवं दुःखी चित्तवाले जीवोंको देखकर, कृपापूर्वक स्वयं 'महामंत्र' का दान दिया एवं भक्तजनोंके प्रति आदेश दिया कि, हे भक्तो! तुम सब मिलकर, नृत्य-वाद्य आदिके सहित, संकीर्तन करो।

श्रीवासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्यने और भी कहा है कि—

"हरेर्नामप्रसादेन निस्तरेत् पातकी जनः।
उपदेष्टा स्वयं कृष्णचैतन्यो जगदीश्वरः।।
कृष्णचैतन्यदेवेन हरिनाम प्रकाशितम्।
येन केनापि तत्प्राप्तं धन्योऽसौ लोकपावनः।।"

श्रीहरिनामकी कृपासे, पापीजनका भी उद्धार हो जाता है; क्योंकि श्रीहरिनामके उपदेशक जगदीश्वर स्वयं श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु हैं। अतः श्रीकृष्णचैतन्यदेवके द्वारा प्रकाशित हरिनाम जिस किसी व्यक्तिको प्राप्त हो गया वही व्यक्ति धन्य है और वह अपने संगसे दूसरे लोगोंको भी पवित्र करनेवाला बन जाता है।

श्रीचैतन्यचरितमहाकाव्य ११ सर्ग, ५४ श्लोकमें महाकवि श्रीकर्णपूरने कहा है—

"ततः श्रीगौराङ्गः समवददतीव प्रमुदितो
हरेकृष्णेत्युच्चैर्वद मुहुरिति श्रीमयतनुः।
ततोऽसौ तत् प्रोच्य प्रतिवलितरोमाञ्चललितो
रुदंस्तत्तत् कर्मारभत बहुदुःखैर्विदलितः।।"

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके संन्यासग्रहणके समय, नाई हाथमें उस्तरा लेकर अत्यन्त दुःखसे रोते-रोते विह्वल हो गया तथा श्रीचैतन्यमहाप्रभुके कुञ्चित केशोंका मुण्डन नहीं कर सका, तब श्रीराधाभाव-विभावित-विग्रहवाले श्रीचैतन्यमहाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले कि हे नापित! तुम उच्चस्वरसे बारंबार 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'—इस 'महामंत्र' का कीर्तन करो। श्रीमन्महाप्रभुका निर्देश पाकर वह नाई मन्त्रमुग्ध होकर महामंत्रका कीर्तन करता हुआ रोमञ्चित और पुलकित होकर महान दुःखसे व्याकुल रहने पर भी रोते-रोते उनका मुण्डन करना आरंभ कर दिया।

"बाहु प्रसारिया प्रभु ब्राह्मणे तुलिला।
तार घरे भक्तिभरे गान आरंभिला।।
ब्राह्मणेर घर येन हैल वृन्दावन।
हरिनाम शुनिबारे आइसे सर्वजन।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"

श्रीचैतन्यमङ्गल ग्रन्थमें भी देखा जाता है कि—

"'हरे कृष्ण' नाम प्रभु बले निरन्तर'।
प्रसन्न श्रीमुखे हरे कृष्ण कृष्ण बलि।
विजय ह्इला गौरचन्द्र कुतूहली।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण बलि' प्रेमसुखे।
प्रत्यक्ष हैला आसि' अद्वैत–सम्मुखे।।"

श्रीचैतन्यभागवतमें भी देखो—

"जय जय 'हरे कृष्ण'–मंत्रेर प्रकाश।
जय जय निजभक्तिग्रहण–विलास।।"

म. ६/११७

"प्रभु बले,—"कृष्णभक्ति हउक सबार।
कृष्णनाम–गुण बइ ना बलिह आर।।
आपने सबारे प्रभु करे उपदेशे।
"कृष्णनाम महामंत्र शुनह हरिषे।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
प्रभु बले, "कहिलाङ एइ महामंत्र।
इहा जप' गिया सबे करिया निर्बन्ध।।
इहा हैते सर्वसिद्धि हइबे सबार।
सर्वक्षण बल इथे विधि नाहि आर।।"

म. २३/७४–७८

"कि शयने कि भोजने किबा जागरणे।
अहर्निश चिन्त कृष्ण बलह वदने।।"

म. २८/२८

"सर्वदा श्रीमुखे 'हरे कृष्ण हरे हरे'।
बलिते आनन्दधारा निरवधि झरे।।"

अ. १/१९९

"कलियुग–धर्म ह्य नामसंकीर्तन।
चारियुगे चारि–धर्म जीवेर कारण।।

आ. १४/१३७

अतएव कलियुगे नामयज्ञ सार।
आर कौन धर्म कैले नाहि हय पार।।

रात्रिदिन नाम लय खाइते शुइते।
ताँहार महिमा वेदे नाहि पारे दिते।।
शुन मिश्र, कलियुगे नाहि तप यज्ञ।
येइ जन भजे कृष्ण, ताँर महाभाग्य।।
अतएव गृहे तुमि कृष्ण भज गिया।
कुटिनाटि परिहरि एकान्त हइया।।
साध्य–साधनतत्त्व ये किछु सकल।
हरिनामसंकीर्तने मिलिबे सकल।।

आ. १४/१३९–१४३

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
एइ श्लोक नाम बलि' लय महामंत्र।
षोल–नाम बत्तिश–अक्षर एइ तंत्र।।
साधिते साधिते यबे प्रेमांकुर हबे।
साध्य–साधनतत्त्व जानिबा से तबे।।

आ. १४/१४५–१४७

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी देखो–

"कृष्णनाम–महामंत्रेर एइ त' स्वभाव।
येइ जपे, तार कृष्णे उपजये भाव।।
कृष्णविषयक प्रेमा–परम पुरुषार्थ।
यार आगे तृणतुल्य चारि पुरुषार्थ।।
पञ्चम पुरुषार्थ–प्रेमानन्दामृतसिन्धु।
ब्रह्मादि आनन्द यार नहे एक बिन्दु।।
कृष्णनामेर फल–'प्रेमा', सर्वशास्त्रे कय।"

आ. ७/८३–८६

"कलिकाले नामरूपे कृष्ण–अवतार।
नाम हैते ह्य सर्वजगत्–निस्तार।।"

आ. १७/२२

"कलिकाले धर्म–कृष्णनामसंकीर्तन।।
संकीर्तनयज्ञे ताँरे करे आराधन।
से त' सुमेधा आर–कलिहतजन।।"

म. ११/९८–९९

"निरन्तर कर कृष्णनामसंकीर्तन।
हेलाय 'मुक्ति' पाबे, पाबे प्रेमधन।।"

म. २५/१४७

"एक 'नामाभासे' तोमार पाप–दोष याबे।
आर 'नाम' लइते कृष्णचरण पाइबे।।"

म. २५/१९२

"नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजय।।"

अ. ३/१७७

अ. ७/१०४

"कलिकालेर धर्म–कृष्णनामसंकीर्तन।"

अ. ७/११

"हर्षे प्रभु कहने,—शुन स्वरूप–रामराय।
नामसंकीर्तन–कलौ परम उपाय।।
संकीर्तनयज्ञे कलौ कृष्ण–आराधन।
सेइ त' सुमेधा पाय कृष्णेर चरण।।"

अ. २०/८–९

"नामसंकीर्तने हय सर्वानर्थ–नाश।
सर्वशुभोदय कृष्णे प्रेमेर उल्लास।।"

अ. २०/११

"खाइते शुइते यथा तथा नाम लय।
काल, देश, नियम नाहि सर्वसिद्धि हय।।"

अ. २०/२६

"एइमत हञा येइ कृष्णनाम लय।
श्रीकृष्णचरणे ताँर प्रेम उपजय।।"

अ. २०/२६

"एकदा कृष्णविरहाद् ध्यायन्ती प्रियसङ्गमम्।
मनोवाष्पनिरासार्थं जल्पतीदं मुहुर्मुहुः।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
यानि नामानि विरहे जजाप वार्षभानवी।
तान्येव तद्भावयुक्तो गौरचन्द्रो जजाप ह।।

श्रीचैतन्यमुखोद्गीर्णा हरे कृष्णेति वर्णकाः।
मज्जयन्तो जगत् प्रेम्णि विजयन्तां तदाह्वयाः।।"

एक समय, श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल हुई श्रीराधिका, अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके मिलनका ध्यान करती हुई, अपनी विरहाग्निको दूर करनेके लिये, "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।" इस 'महामंत्र' का जप करने लगीं। श्रीकृष्णके विरहमें श्रीमती राधिकाने, श्रीकृष्णके जिन नामोंका जप किया था, श्रीराधाभावविभावित श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी, उन्हीं नामोंका जप किया था। अतः श्रीचैतन्यमहाप्रभुके श्रीमुखसे निकले हुए श्रीकृष्णके सोलह नामात्मक तथा बत्तीस अक्षरात्मक श्रीहरिनाम महामंत्र, विश्वको कृष्णप्रेममें निमग्न करते हुए सर्वोपरि विराजमान रहें; उनकी जय हो, जय हो।।

ब्रह्माण्डपुराण उत्तरखण्ड, ६/५५ में भी महामंत्रका उल्लेख है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

'हरिः' 'कृष्णः' 'राम' इति नामत्रयात्मको 'महामंत्रः'।
तस्मिन् संबोधनात्मकानि त्रीणि नामानि सन्ति। तत्र त्रयाणाम्

महामंत्रकी व्याख्याएँ

माधुर्यमयी व्याख्या—

विज्ञाप्य भगवत्तत्त्वं चिद्घनानन्दविग्रहम्।
हरत्यविद्यां तत्कार्यमतो हरिरिति स्मृतः।।
आनन्दैकसुखः श्रीमान् श्यामः कमललोचनः।
गोकुलानन्दो नन्दनन्दनः कृष्ण ईर्यते।।
वैदग्धीसारसर्वस्वं मूर्तलीलाधिदैवतम्।
श्रीराधां रमय नित्यं राम इत्यभिधीयते।।

(ब्रह्माण्ड पुराण)

हरि, कृष्ण, राम—इन तीन नामोंसे युक्त 'महामंत्र' है। उसमें संबोधनात्मक तीन नाम हैं। उन तीनों नामोंकी माधुर्यमयी व्याख्या इस प्रकार है—

सच्चिदानन्द-विग्रहवाले भगवान् अपने तत्त्वको भलीभाँति समझा कर, जीवकी अविद्याको एवं उसके कार्य अज्ञानको हरते रहते हैं; अतः वे 'हरि'-नामसे स्मरण किये जाते हैं। एकमात्र आनन्दरसविग्रह, गोकुलके आनन्दप्रद कमललोचन, नन्दनन्दन श्रीश्यामसुन्दर ही, 'कृष्ण'-नामसे कहे जाते हैं। लीलाके मूर्तिमान्विग्रह या अधिष्ठातृदेव रसिकचूडामणि विदग्धशिरोमणि श्रीकृष्ण श्रीमती राधिकाको निरन्तर रमण कराते रहते हैं अर्थात् आनन्दित करते रहते हैं, इसीलिए वे 'राम' नामसे अभिहित किये जाते हैं।

ऐश्वर्यमयी व्याख्या—

हरित त्रिविधं तापं जन्मकोटिशतोद्भवम्।
पापं च स्मरतां यस्मात्तस्माद्धरिरिति स्मृतः।।
कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।।
रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परंब्रह्माऽभिधीयते।।

भगवान् श्रीकृष्ण अपना स्मरण करनेवाले भक्तोंके करोड़ों जन्मोंके त्रिविध-तापों एवं कायिक-वाचिक-मानसिक तीनों प्रकारके पापोंको हर लेते हैं अतएव वे 'हरि'-नामसे जाने जाते हैं। 'कृष्'-धातु आकर्षक सत्तावाचक है और 'ण'-शब्द निर्वृति अर्थात् आनन्दवाचक है। इन दोनोंकी एकतामय आनन्द-स्वरूप आकर्षक परब्रह्म ही 'कृष्ण'-नामसे कहे जाते हैं। नित्य आनन्द-स्वरूप एवं चिन्मय स्वरूपवाले जिन श्रीकृष्णमें योगीलोग रमण करते हैं अर्थात् क्रीड़ा करते हैं, तात्पर्य—उनके ध्यानसे आनन्द प्राप्त करते हैं, अतः परब्रह्मस्वरूप वे श्रीकृष्ण ही 'राम'-नामसे कहे जाते हैं।

युगलस्मरणमयी व्याख्या—

मनो हरित कृष्णस्य कृष्णाह्लादस्वरूपिणी।
ततो हरा श्रीराधैव तस्याः संबोधनं हरे।।
अपगृह्य त्रपां धर्मं धैर्यं मानं व्रजस्त्रियः।
वेणुना कर्षति गृहात् तेन कृष्णोऽभिधीयते।।
स्मयत्यनिशं रूप-लावण्यैर्व्रजयोषिताम्।
मनः पंचेन्द्रियाणीह रामस्तस्मात् प्रकीर्तितः।।

श्रीकृष्णकी आह्लादस्वरूपिणी (ह्लादिनीशक्ति) श्रीराधा श्रीकृष्णके चित्तको हर लेती हैं, अतः श्रीराधा ही 'हरा'–नामसे कही जाती हैं। 'हरा'–शब्दका संबोधनमें 'हरे' रूप बनता है। व्रजराजकुमार व्रजाङ्गनाओंकी लज्जा–धर्म–धैर्य एवं मानको हरकर, अपनी वंशीके द्वारा, उनको अपने–अपने घरसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं; अतएव वे 'कृष्ण'–नामसे अभिहित किये जाते हैं। वे ही श्रीकृष्ण अपने रूप–लावण्य आदिसे व्रजाङ्गनाओंके मन एवं इन्द्रियोंको निरन्तर आनन्दित करते रहते हैं, इसी कारण वे 'राम'–नामसे कहे जाते हैं।

श्रीजीवगोस्वामिकृता 'महामंत्र'–व्याख्या—

सर्वचेतोहरः कृष्णस्तस्य चित्तं हरत्यसौ।
वैदग्धीसारविस्तारैरतो राधा हरा मता।।१।।
कर्षति स्वीयलावण्यमुरलीकलनिःस्वनैः।
श्रीराधां मोहनगुणाऽलंकृतः कृष्ण ईर्यते।।२।।
श्रूयते नीयते रासे हरिणा हरिणेक्षणा।
एकाकिनी रहःकुंजे हरेयं तेन कथ्यते।।३।।
अङ्गश्यामलिमस्तोमैः श्यामलीकतकाञ्चनः।
रमते राधया सार्धमतः कृष्णो निगद्यते।।४।।
कृत्वारण्ये सरः श्रेष्ठं कान्तयानुमतस्तया।
आकृष्य सर्वतीर्थानि तज्ज्ञानात् कृष्ण ईर्यते।।५।।
कृष्यते राधया प्रेम्णा यमुनातटकाननम्।
लीलया ललितश्चापि धीरैः कृष्ण उदाहृतः।।६।।
हृतवान् गोकुले तिष्ठन्नरिष्टं पुष्टपुङ्गवम्।
श्रीहरिस्तं रसादुच्चै रायतीति हरा मता।।७।।
ह्यस्फुटं रायति प्रीतिभरेण हरिचेष्टितम्।
गायतीति मता धीरैर्हरा रसविचक्षणैः।।८।।
रसावेशपरिस्त्रस्तां जहार मुरलीं हरेः।
हरेति कीर्तिता देवी विपिने केलिलंपटा।।९।।
गोवर्धनदरीकुंजे परिरंभविचक्षणः।
श्रीराधां रमयामास रामस्तेन मतो हरिः।।१०।।

हन्ति दुःखानि भक्तानां राति सौख्यानि चान्वहम्।
हरा देवी निगदिता महाकारुण्यशालिनी।।११।।
रमते भजते चेतः परमानन्दवारिधौ।
अत्रेति कथितो रामः श्यामसुन्दरविग्रहः।।१२।।
रमयत्यच्युतं प्रेम्णा निकुञ्जवनमन्दिरे।
रामा निगदिता राधा रामो युक्तस्तया पुनः।।१३।।
रोदनैर्गोकुले दावानलमाशयति ह्यसौ।
विशोषयति तेनोक्तो रामो भक्तसुखावहः।।१४।।
निहन्तुमसुरान् यातो मथुरापुरमित्यसौ।
तदागमद्गहःकामो यस्याः सासौ हरेति च।।१५।।
आगत्य दुःखहर्ता यो सर्वेषां व्रजवासिनाम्।
श्रीराधाहारिचरितो हरिः श्रीनन्दनन्दनः।।१६।।

श्रीकृष्णचन्द्र अपने लोकोत्तर सौन्दर्यसे, सभीके चित्तको हरनेवाले हैं; किन्तु श्रीमती राधिका अपने श्रेष्ठ चातुर्यके विस्तारसे श्रीकृष्णके चित्तको भी हर लेती हैं, अतः श्रीराधिका 'हरा' मानी जाती हैं। 'हरा'-शब्दका संबोधनके एकवचनमें 'हरे'-रूप बनता है।।१।।

भुवनमोहनगुणोंसे अलंकृत श्रीहरि अपने लावण्य (सौन्दर्य) एवं मुरलीकी मधुरध्वनियोंके द्वारा श्रीराधिकाको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं, अतः 'कृष्ण'-नामसे कहे जाते हैं।।२।।

महापुरुषोंके मुखसे सुना जाता है कि, मृगलोचना श्रीमती राधिका श्रीकृष्णके द्वारा रासमण्डलमें विद्यमान एकान्तनिकुञ्जमें अकेली ही अपहरणकी जाती हैं अतः राधिका ही 'हरा'-नामसे कही जाती हैं, जिनका संबोधनमें 'हरे'-रूप बनता है।।३।।

अपने श्रीअङ्गकी श्यामकान्तिके समुदायके द्वारा, जो सुवर्णको भी श्यामवर्णका बना देते हैं, अतः वे ही श्रीराधारमण श्यामसुन्दर 'कृष्ण'-नामसे कहे जाते हैं।।४।।

अपनी कान्ता श्रीराधिकाकी इच्छाके अनुसार श्रीहरिने, गोवर्धनके निकट व्रजके वनमें श्यामकुण्ड-नामक श्रेष्ठ सरोवरको प्रकटकर उसमें सब तीर्थोंको आकर्षित किया था, इस गूढ़ रहस्यको जानकर ही, विज्ञजन उनको 'कृष्ण'-नामसे अभिहित करते हैं।।५।।

अपनी भुवनमोहिनीलीलासे धीरललित नायक, सर्वमोहन श्रीहरि भी श्रीराधिकाके महाभावरूपी लोकोत्तर प्रेमके द्वारा, यमुनातटवर्ती श्रीवृन्दावनमें आकर्षित किये जाते हैं, इसीलिए बुद्धिमान् जन उनको 'कृष्ण'–नामसे पुकारते हैं।।६।।

व्रजमें निवास करते समय श्रीकृष्णने, वृषरूपधारी बलिष्ठ अरिष्टासुरके प्राणपर्यन्तका अपहरण किया था। उस समय श्रीराधिकाने उनको आनन्दोल्लासपूर्वक उच्च स्वरसे 'हरि–हरि' कहकर पुकारा था, अतः राधा 'हरा'–नामसे जानी जाती हैं। 'हरा'–शब्दका संबोधनमें 'हरे'–रूप बनता है।।७।।

श्रीराधिका, श्रीकृष्णकी लीलाओंको कभी अस्पष्ट स्वरमें गाती हैं, तो कभी प्रीतिकी अधिकताके कारण उच्च स्वरसे गाती हैं, अतएव रसविवेचनमें अभिज्ञपंडितोंके द्वारा, वे 'हरा'–नामसे मानी जाती हैं, जिनका संबोधनमें 'हरे'–रूप बनता है।।८।।

वृन्दावनमें क्रीड़ापरायणा श्रीमती राधिकाने, रसके आवेशमें श्रीकृष्णके हाथसे गिरी हुई मुरलीका अपहरण किया था, इसीलिये राधिकादेवी 'हरा'–नामसे कही जाती हैं, जिसके संबोधनमें 'हरे'–रूप बनता है।।९।।

आलिङ्गन करनेमें चतुरशिरोमणि श्रीकृष्णने, गोवर्धनकी गुफारूप–निकुञ्जमें, श्रीराधिकाके साथ रमण अर्थात् क्रीड़ा की थी, अतः वे 'राम'–नामसे जाने जाते हैं।।१०।।

महाकारुण्यशालिनी देवी राधिका भक्तोंके समस्त दुःखोंको हर लेती हैं, एवं प्रतिदिन सुखोंको प्रदान करती हैं, अतएव वे 'हरा'–नामसे जानी जाती हैं, जिनका संबोधनमें 'हरे'–रूप बनता है।।११।।

भजन करनेवाले भक्तोंका मन, परमानन्दसिन्धु–श्रीकृष्णमें रमण करता है, इस कारणसे श्यामसुन्दर विग्रहवाले श्रीकृष्ण ही यहाँपर 'राम'–नामसे अभिहित होते हैं।।१२।।

श्रीमती राधिका निकुञ्जमें श्रीहरिको प्रेमपूर्वक आनन्द प्रदान करती हैं, अतएव "रमयति—आनन्दयति" इस व्युत्पत्तिके अनुसार उन्हींका नाम 'रामा' है। रामा अर्थात् श्रीराधाके साथ सम्मिलित होनेके कारण, श्रीकृष्ण ही 'राम'–नामसे जाने जाते हैं।।१३।।

व्रजवासियोंके रोदनसे परिपूर्ण व्रजमें भक्तजन–सुखदायी श्रीकृष्णने, दावानलका पानकर उसे सुखा दिया था, अतः भक्तोंको रमण करानेवाले वे श्रीकृष्ण ही, 'राम'–नामसे कहे जाते हैं।।१४।।

श्रीकृष्ण कंस आदि असुरोंको मारनेके लिए मथरापुरीमें चले गये थे, पश्चात् श्रीराधिकासे एकान्तमें मिलनेकी अभिलाषासे पुनः व्रजमें आ गये; अतः मथुरा आदि धामसे व्रजकी ओर श्रीकृष्णका अपहरण करनेके कारण श्रीराधिका ही 'हरा'–नामसे कही जाती हैं, जिनका संबोधनमें 'हरे'–रूप बनता है।।१५।।

जिन्होंने मथुरा एवं द्वारकासे आकर, समस्त व्रजवासियोंका दुःख हर लिया था; अतः श्रीमती राधिकाके मनको हरनेवाली लीलाओंसे युक्त श्रीनन्दनन्दन ही 'हरि'–नामसे अभिहित किये जाते हैं। 'हरि'–शब्दका संबोधनमें 'हरे' ऐसा रूप बनता है।।१६।।

इति श्रीजीवगोस्वामिविरचिता 'महामंत्र'–व्याख्या समाप्ता।

श्रीगोपालगुरुगोस्वामिकृता 'महामंत्र'–व्याख्या—

अज्ञानतत्कार्यविनाशहेतोः सुखात्मनः श्यामकिशोरमूर्तेः।
श्रीराधिकाया रमणस्य पुंसः स्मरन्ति नित्यं महतां महान्तः।।१।।
विलोक्य तस्मिन् रसिकं कृतज्ञं जितेन्द्रियं शान्तमनन्यचित्तम्।
कृतार्थयन्ते कृपया सुशिष्यं प्रदाय नामत्रययुक्तपद्यम्।।२।।
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः।।३।।
विज्ञाप्य भगवत्तत्त्वं चिद्घनानन्दविग्रहम्।
हरत्यविद्यां तत्कार्यमतो हरिरिति स्मृतः।।४।।

अथवा सर्वेषां स्थावरजङ्गमादीनां तापत्रयं हरतीति हरिः। यद्वा दिव्यसद्गुणश्रवणकथनद्वारा सर्वेषां विश्वादीनां मनो हरतीति। यद्वा स्वमाधुर्येण कोटिकन्दर्पलावण्येन सर्वेषामवतारादीनां मनो हरतीति हरिः। हरिशब्दस्य संबोधने 'हे हरे'।।५।।

रासादिप्रेमसौख्यार्थे हरेर्हरति या मनः।
हरा सा गीयते सद्भिर्वृषभानुसुता परा।।६।।
स्वरूपप्रेमवात्सल्यैर्हरेर्हरति या मनः।
हरा सा कथ्यते सद्भिः श्रीराधा वृषभानुजा।।७।।
हरति श्रीकृष्णमनः कृष्णाह्लादस्वरूपिणी।
अतो हरेत्यनेनैव श्रीराधा परिगीयते।
इत्यादिना श्रीराधावाचक–हरा–शब्दस्य संबोधने हरे।।८।।

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।।९।।
ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।।१०।।
आनन्दैकसुखः श्रीमान् श्यामः कमललोचनः।
गोकुलानन्दनो नन्दनन्दनः कृष्ण ईर्यते।
कृष्णशब्दस्य संबोधने कृष्ण।।११।।
राशब्दोच्चारणाद्देवि! बहिर्निर्यान्ति पातकाः।
पुनः प्रवेशकाले तु मकारश्च कपाटवत्।।१२।।
रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनादः परंब्रह्माऽभिधीयते।।१३।।
वैदग्धीसारसर्वस्वं मूर्तलीलाधिदैवतम्।
श्रीराधां रमयन् नित्यं राम इत्यभिधीयते।।१४।।
श्रीराधायाश्चित्तमाकृष्य रमते क्रीडतीति रामः।
रामशब्दस्य संबोधने राम।।

तथा हि क्रमदीपिकायां चन्द्रं प्रति श्रीकृष्णः—

मम नामशतैन्वेव राधानाम सदुत्तमम्।
यः स्मरेत्तु सदा राधां न जाने तस्य किं फलम्।।१५।।

अज्ञान और उसके द्वारा उत्पन्न संसाररूप-व्याधिको विनष्ट करनेवाले, आनन्दस्वरूप, श्यामकिशोरमूर्ति, श्रीराधारमणको महाभागवतगण नित्य स्मरण करते हैं।।१।।

वे ही महाभागवतगण अपने योग्य-शिष्यको, उन्हीं श्रीराधारमणमें अनुरागी रसिक देखकर एवं उस शिष्यको कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, शान्त तथा अनन्यचित्तवाला समझकर, कृपा करके 'हरे कृष्ण' इत्यादि तीन नामोंसे युक्त पद, अर्थात् 'महामंत्र' देकर कृतार्थ कर देते हैं।।२।।

बिना इच्छाके स्पर्श किया हुआ अग्नि भी जिस प्रकार जला ही देता है, उसी प्रकार दुष्टचित्तवाले मनुष्योंके द्वारा किसी भी प्रकारसे स्मरण किए हुए प्रभु उनके समस्त पापोंको हर लेते हैं, अतः उनका नाम 'हरि' है।।३।।

अथवा सच्चिदानन्दविग्रह-स्वरूप भगवान् अपने नामका कीर्तन-स्मरण करनेवालोंके हृदयमें अपने तत्त्वकी स्फूर्त्ति कराकर अविद्या और उसके

कार्य अज्ञानको हर लेते हैं, अतः वे ही प्रभु 'हरि'-नामसे स्मरण किए जाते हैं।।४।।

अथवा स्थावर-जङ्गम आदि सभी प्राणियोंके तीनों प्रकारके तापोंको हर लेते हैं, इसी कारण वे 'हरि' कहलाते हैं, अथवा अपने अप्राकृत सद्गुणोंके श्रवण-कीर्तनके द्वारा सभी संसारी प्राणियोंके मनको हर लेते हैं; अतएव उनका नाम 'हरि' है, अथवा करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक अपने स्वाभाविक सौन्दर्य माधुर्यके द्वारा सब अवतारोंके मनको हर लेते हैं; अतः व्रजराजकुमार वे श्रीकृष्ण ही 'हरि'-नामसे कहे जाते हैं। 'हरि'-शब्दके संबोधनमें 'हरे'-रूप बनता है।।५।।

अथवा रास आदिके प्रेममय सुखको संपादन करनेके लिए अपने स्वरूप-गुण-प्रेम-वात्सल्य आदिके द्वारा श्रीकृष्णके मनको भी हर लेती हैं, अतः श्रीकृष्णकी ह्लादिनीशक्ति वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा ही सज्जनोंके द्वारा 'हरा'-नामसे कही जाती हैं, एवं गायी जाती हैं। इस प्रकार राधा-वाचक 'हरा'-शब्दका संबोधनमें 'हरे'-रूप बनता है।।६-८।।

'कृष'-धातु आकर्षक, सत्तावाचक और 'ण'-शब्द निर्वृति अर्थात् आनन्दवाचक हैं। इन दोनोंके एकतामय आनन्दस्वरूप सर्वाकर्षक परब्रह्म ही 'कृष्ण'-नामसे अभिहित होते हैं।।९।।

स्वयं अनादि तथा सबके आदि और सब कारणोंके कारण, सच्चिदानन्द-विग्रहवाले परमेश्वर गोविन्द ही 'कृष्ण'-नामसे कहे जाते हैं।।१०।।

एकमात्र आनन्दरसविग्रह एवं गोकुलको आनन्द देनेवाले, कमललोचन, नन्दनन्दन श्रीमान् श्यामसुन्दर ही 'कृष्ण'-नामसे कहे जाते हैं। 'कृष्ण'-शब्दके संबोधनमें 'कृष्ण' ऐसा रूप बनता है।।११।।

शंकरजी पार्वतीके प्रति बोले कि हे देवि! 'राम'-शब्दके पहले अक्षर 'रा'-शब्दके उच्चारणसे समस्त पाप शरीरसे बाहर निकल जाते हैं, पुनः प्रवेश करनेके समय तो 'म'-कार मुखके ऊपर किवाड़की तरह लग जाता है, अतः पाप पुनः प्रवेश नहीं कर पाते।।१२।।

योगिजन चिन्मय, अनन्त, सत्य और आनन्दस्वरूप जिस परतत्त्वमें रमण करते हैं, वह परतत्त्व परं ब्रह्म ही 'राम'-नामसे कहा जाता है।।१३।।

रसमयी लीलाके मूर्तिमान् अधिष्ठातृदेव चतुरशिरोमणि रसिकशेखर श्रीकृष्ण श्रीमती राधिकाको नित्य रमण कराते रहते हैं, अतः वे ही 'राम'-नामसे कहे जाते हैं।।१४।।

अथवा श्रीराधिकाके चित्तको अपनी ओर आकर्षित करके उनके साथ रमण करते हैं अर्थात् क्रीड़ा करते हैं, अतः वे श्रीकृष्ण ही 'राम'-नामसे कहे जाते हैं। 'राम'-शब्दके संबोधनमें 'राम' ऐसा रूप बनता है। देखो, 'क्रमदीपिका' में चन्द्रमाके प्रति श्रीकृष्णने कहा है कि मेरे सैंकड़ों नामोंकी अपेक्षा 'राधा'-नाम श्रेष्ठ है। जो व्यक्ति, सदा सर्वदा श्रीराधाका स्मरण-कीर्तन करता है, उसको क्या फल मिलता है, इसको मैं भी नहीं जानता।।१५।।

हरे—कृष्णस्य मनो हरतीति हरा राधा, तस्याः संबोधनने हे हरे। राधिका श्रीकृष्णके मनको हर लेती हैं, अतः वे ही 'हरा'-नामसे कही जाती हैं। उसके संबोधनमें 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

कृष्ण—राधाया मनः कर्षतीति कृष्णः, तस्य संबोधने हे कृष्ण। जो श्रीराधाके मनको आकर्षित करते हैं, वे हैं श्रीकृष्ण। 'कृष्ण'-शब्दके संबोधनमें 'हे कृष्ण' ऐसा रूप बनता हैं।

हरे—कृष्णस्य लोकलज्जाधैर्यादि सर्वं हरतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। श्रीराधिका, श्रीकृष्णके लोकलज्जा-धैर्य आदि सबको हर लेती हैं। इस कारण वे 'हरा' कहलाती हैं। 'हरा'-शब्दका संबोधनमें 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

कृष्ण—राधाया लोकलज्जाधैर्यादि सर्वं कर्षतीति कृष्णः, तस्य संबोधने हे कृष्ण। श्रीकृष्ण, राधिकाके लोकलज्जा-धैर्यादि सभीको आकर्षित कर लेते हैं। इसी कारण वे 'कृष्ण' कहलाते हैं। 'कृष्ण'-शब्दका संबोधनमें 'हे कृष्ण' ऐसा रूप बनता है।

कृष्ण—यत्र यत्र राधा तिष्ठति गच्छति वा तत्र तत्र सा पश्यति कृष्णो मां स्पृशति, बलात् कञ्चुकादिकं सर्वं हरतीति कृष्णः, तस्य संबोधने हे कृष्ण। श्रीराधिका जहाँ-जहाँ हैं अथवा जाती हैं, वे वहाँ-वहाँ देखती हैं कि श्रीकृष्ण मेरा स्पर्श कर रहे हैं तथा बलपूर्वक मेरी कंचुकी आदि सबको आकर्षण कर रहे हैं। इसी कारण वे 'कृष्ण' कहे जाते हैं। 'कृष्ण'-शब्दके संबोधनमें 'हे कृष्ण' ऐसा रूप बनता है।

कृष्ण—पुनर्हर्षतां गमयति वनं कर्षतीति कृष्णः, तस्य संबोधने हे कृष्ण। वे श्रीराधाको हर्षित करते हैं एवं वंशी बजाकर वृन्दावनकी ओर आकर्षित

करते हैं। इसीलिये 'कृष्ण' कहलाते हैं। 'कृष्ण'-शब्दके संबोधनमें 'हे कृष्ण' ऐसा रूप बनता है।

हरे—यत्र कृष्णो गच्छति तिष्ठति वा तत्र तत्र पश्यति राधा ममाग्रे पार्श्वे सर्वत्र तिष्ठति विहरति इति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। श्रीकृष्ण जिस स्थानमें जाते हैं या बैठते हैं, वे उस उस स्थानपर देखते हैं कि, श्रीराधा मेरे आमने-सामने मेरे अगल-बगल चारों ओर विराजमान हैं—सभी ओर विहार कर रही हैं। अतएव वे 'हरा' कहलाती हैं। 'हरा'-शब्दके संबोधनमें 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

हरे—पुनस्तं कृष्णं हरति स्वस्थानमभिसारयतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। वे ही पुनः श्रीकृष्णको हरती हैं, अर्थात् अपने संकेत-स्थानकी ओर श्रीकृष्णका अभिसार कराती हैं; अतः श्रीराधा ही 'हरा'-नामसे कही जाती हैं। जिसके संबोधनमें 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

हरे—कृष्णं वनं हरति वनमागमयतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। श्रीकृष्णको वनकी ओर हरती हैं, अर्थात् वृन्दावनकी ओर हरण करती हैं; अतः श्रीराधा ही 'हरा' कहलाती हैं। जिसके संबोधनमें 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

राम—रमयति तां नर्मनिरीक्षणादिनेति रामः, तस्य संबोधने हे राम। श्रीकृष्ण अपने हास-परिहास, दर्शन आदिसे श्रीराधिकाको रमण कराते हैं अर्थात् आनन्दित करते हैं; अतः उनका ही नाम 'राम' है। जिसके संबोधनमें 'हे राम' ऐसा रूप बनता है।

हरे—तात्कालिकं धैर्यावलंबनादिकं कृष्णस्य हरतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। श्रीकृष्णके तात्कालिक धैर्य-अवलंबन आदिको हरण कर लेती हैं, अतः श्रीराधा ही 'हरा' हैं। जिसके संबोधनमें 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

राम—चुम्बन-स्तनाकर्षणालिङ्गनादिभिः रमते इति रामः, तस्य संबोधने हे राम। श्रीकृष्ण चुम्बन, स्तन-आकर्षण एवं आलिङ्गन आदिके द्वारा श्रीराधिकाके साथ रमण अर्थात् क्रीड़ा करते हैं; अतः वे ही 'राम'-नामसे कहे जाते हैं। जिसके संबोधनमें 'हे राम' ऐसा रूप बनता है।

राम—पुनस्तां पुरुषोचितां कृत्वा रमयतीति रामः, तस्य संबोधने हे राम। श्रीकृष्ण राधिकाको पुरुषाकार बनाकर उसके साथ पुनः रमण करते हैं, अतएव वे 'राम'-नामसे कहे जाते हैं। जिसके सेबोधनमें 'हे राम' ऐसा रूप बनता है।

राम—पुनस्तत्र रमते इति रामः, तस्य संबोधने हे राम। वहाँपर पुनः-पुनः उसी प्रकार रमण करते हैं, इसी कारण वे 'राम'-नामसे कहे जाते हैं। जिसके संबोधनमें 'हे राम' ऐसा रूप बनता है।

हरे—पुनः रासान्ते कृष्णस्य मनो हृत्वा गच्छतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। रासलीलाके अन्तमें, पुनः श्रीकृष्णके मनको हर कर चली जाती हैं, अतः राधा ही 'हरा'-नामसे कही जाती हैं। जिसके संबोधनमें 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

हरे—राधाया मनो हृत्वा गच्छतीति हरिः कृष्णः, तस्य संबोधने हे हरे।श्रीकृष्ण भी रासलीलाके अन्तमें, राधिकाके मनको हर कर चले जाते हैं, अतः वे ही 'हरि' कहलाते हैं। जिसके संबोधनमें 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

इति श्रीगोपालगुरुगोस्वामिविरचिता 'महामंत्र'-व्याख्या समाप्ता।

श्रीरघुनाथदासगोस्वामिकृता 'महामंत्र'-व्याख्या—

एकदा कृष्णविरहाद् ध्यायन्ती प्रियसङ्गमम्।
मनोवाष्पनिरासार्थं जल्पतीदं मुहुर्मुहुः।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

हे हरे—स्वनामश्रवणमात्रेण स्वमाधुर्येण च मच्चेतो हरसि।

तत्र हेतुः **हे कृष्ण इति। कृष् शब्दस्य सर्वार्थः णश्च आनन्दस्वरूप इति स्वार्थे णः। सच्चिदानन्दस्वरूपक इति स्वीयेन सार्वदिकपरमानन्देन सर्वाधिकपरमानन्देन वा प्रलोभ्य इति भावः।**

ततश्च हे हरे—वंशीवादने मम धैर्यलज्जागुरुभयादिकमपि हरसि।

ततश्च हे कृष्ण—स्वाङ्गसौरभेण मां स्वगृहेभ्यो वृन्दावनं प्रत्याकर्षसि।

ततश्च हे कृष्ण—वनं प्रविष्टाया मे कंचुकीं सहसैवागत्य कर्षसि।

ततश्च हे कृष्ण—स्वाङ्गलावण्येन सर्वाधिकानन्देन च मां प्रलोभ्य मत् कुचौ कर्षसि (नखैराकर्षसि)।

ततश्च हे हरे—स्वबाहुनिबद्धां मां पुष्पशय्यां प्रति हरसि।

ततश्च हे हरे—तत्र निवेशिताया मे अन्तरीयमपि बलाद्धरसि।

हे हरे—अन्तरीयवसनहरणमिषेणात्मविरहपीडां सर्वामेव हरसि।

ततश्च हे राम—स्वच्छन्दं मयि रमसे।

ततश्च हे हरे—यदवशिष्टं मे किञ्चिद् वाम्यमासीत्तदपि हरसि।

ततश्च हे राम—मां रमयसि स्वस्मिन् पुरुषायितामपि करोषि।

ततश्चहे राम—रमणीयचूडामणे! तव नवीनवक्त्रमाधुर्यमपि निःशंकं तदात्मानं तव रामणीयकं मन्नयनाभ्यां द्वाभ्यामेवाऽऽस्वाद्यते इति भावः।

ततश्च हे राम—रमणं रमः, रमस्य भावः रामः; हे राम! तदा त्वं साक्षाद् रमणाधिदेवभावरूपोऽप्राकृतकन्दर्प एव भवसि, अथवा न केवलं रमणरूपेणापि रमणकर्तुरमणप्रयोजकः किन्तु तद्भावरूपा रतिमूर्तिरिव त्वं भवसीति भावः।

ततश्च हे हरे—मच्चेतनामृगीमपि हरसि, मामानन्दमूर्च्छितां करोषीति भावः।

यतो हे हरे—सिंहस्वरूप! तदापि त्वं रतिकर्मणि सिंह इव महाप्रागल्भ्यं प्रकटयसीति भावः।

एवंभूतेन त्वया प्रेयसा वियुक्ताऽहं क्षणमपि कल्पकोटिमिव यापयितुं कथं प्रभवामीति स्वयमेव विचारय इति नाम षोडशकस्याऽभिप्रायः। ततश्च नामभिश्चुम्बकैरिव कृष्णः कृष्णया सहसैवाऽऽकृष्टो मिलितपरमानन्द एव। तस्याः स्वसखीनां तत्परिवारवर्गस्य तद्भावसाधकानामर्वाचीनानामपि श्रीराधाकृष्णो मानसं संपूरयतः।

इति श्रीरघुनाथदासगोस्वामिविरचिता 'महामंत्र'-व्याख्या समाप्ता।

श्रीसच्चिदानन्दभक्तिविनोदठक्कुरकृता

'महामंत्र'-व्याख्या—

हे हरे—मच्चित्तं हृत्वा भवबन्धनान्मोचय। हे हरे! मेरे चित्तको हरकर, मुझे भवबन्धनसे विमुक्त कर दीजिये।

हे कृष्ण—मच्चित्तमाकर्ष। हे कृष्ण! मेरे चञ्चल चित्तको अपनी ओर आकर्षित कर लीजिये।

हे हरे—स्वमाधुर्येण मच्चित्तं हर। हे हरे! अपने स्वाभाविक माधुर्यसे मेरा चित्त हर लीजिये।

हे कृष्ण—स्वभक्तद्वारा भजनज्ञानदानेन मच्चित्तं शोधय। हे कृष्ण! भक्तितत्त्ववेत्ता अपने भक्तके द्वारा अपने भजनका ज्ञान देकर मेरे चित्तको शुद्ध बनाइये।

हे कृष्ण—नामरूपगुणलीलादिषु मन्निष्ठां कुरु। हे कृष्ण! अपने नाम-रूप-गुण-लीला आदिकोंमें मेरी निष्ठा बना दीजिए।

हे कृष्ण—रुचिर्भवतु मे। हे कृष्ण! आपके नाम-रूप-गुण-लीला आदिमें मेरी रुचि उत्पन्न हो जाय।

हे हरे—निजसेवायोग्यं मां कुरु। हे हरे! मुझे आप अपनी सेवाके योग्य बना लीजिए।

हे हरे—स्वसेवामादेशय।हे हरे! मुझे सेवाके योग्य बनाकर अपनी सेवाका आदेश दीजिए।

हे हरे—स्वप्रेष्ठेन सह स्वाभीष्टलीलां श्रावय।हे हरे! अपने प्रियतम भक्तोंके सहित मुझे अपनी अभीष्ट लीलाका श्रवण कराइये।

हे राम—प्रेष्ठया सह स्वाभीष्टलीलां मां श्रावय। हे राम! हे राधिकारमण! आप अपनी प्रियतमा श्रीराधिकाके सहित गोलोकमें श्रीराधिकाकी सभामें मधुकण्ठ एवं स्निग्धकण्ठके द्वारा मुझे अपनी अभीष्ट लीलाका श्रवण कराइये।

हे हरे—स्वप्रेष्ठेन सह स्वाभीष्टलीलां मां दर्शय।हे हरे! हे श्रीमती राधिके! आप अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ अपनी अभीष्ट लीलाओंका दर्शन कराइये।

हे राम—प्रेष्ठया सह स्वाभीष्टलीलां मां दर्शय। हे राम! हे राधिकारमण! आप अपनी प्रियतमाके साथ अपनी अभीष्ट लीलाओंका दर्शन कराइये।

हे राम—नामरूपगुणलीलास्मरणादिषु मां योजय। हे राम! अन्तरङ्गभक्तोंके साथ क्रीड़ा करनेवाले कृष्ण! आप मुझे कृपया अपने नाम ,रूप, गुण, लीला एवं स्मरण आदिमें नियुक्त कर लें।

हे राम—तत्र मां निजसेवायोग्यं कुरु।हे राम! अन्तरङ्गभक्तोंको सुख देनेवाले श्याम! आप मुझे अपने नाम-रूप-गुण-लीला-स्मरण आदिमें, समयानुसार अपनी सेवाके योग्य बना लीजिए।

हे हरे—मां स्वाङ्गीकृत्य रमस्व।हे हरे! मुझ दीन-हीन-मलिनजनको अंगीकार करके मेरे साथ भी यथायोग्य क्रीड़ा कीजिए।

हे हरे—मया सह रमस्व। हे हरे! मेरे साथ विशुद्ध क्रीड़ा कीजिए। आपके श्रीचरणोंमें मेरी यही विनम्र प्रार्थना है।

इति श्रीसच्चिदानन्दभक्तिविनोदठकुरविरचितश्रीचैतन्यशिक्षामृतादुद्धृता
'महामंत्र'-व्याख्या समाप्ता।

पदकल्पतरुमें 'महामंत्र' की व्याख्या

नर हरिनाम अन्तरे अछु भावह
ह्वे भवसागरे पार।
धर रे श्रवणे नर हरिनाम सादरे
चिन्तामणि उह सार।।
यदि कृत-पापि आदरे कभु मंत्रक-
राज श्रवणे करे पान।
श्रीकृष्णचैतन्य बले हय तछु दुर्गम
पाप ताप सह त्राण।।
करह गौर-गुरु-वैष्णव-आश्रय
लह नर हरिनाम-हार।
संसारे नाम लइ सुकृति हइया तरे
आपामर दुराचार।।
इथे कृत-विषय-तृष्ण पहुँ-नाम-हारा
ये धारणे श्रम-भार।
कुतृष्ण जगदानन्द कृत-कल्मष
कुमति रहल कारागार।।

(पदकल्पतरु। गौरपदतरङ्गिणी तरङ्ग १, उच्छ्वास २, पद ५९, पृष्ठ १५)

१ ३

नर ह रि–नाम अन्त रे अछु भावह ह बे भवसाग रे पार।
धर रे श्रवणे नर ह रि–नाम साद रे चिन्तामणि उ ह सार।।
यदि कृ त–पापि आद रे कभु मंत्रक– रा ज श्रवणे क रे पान।
श्रीकृ ष्ण चैतन्य बले ह य तछु दुर्ग म पाप ताप स ह त्राण।।
कर ह गौर–गुरु– वै ष्ण व आश्रय ल ह नर हरिना म हार।
संसा रे नाम लइ सु कृ ति हइया त रे आपामर दु रा चार।।
इथे कृ त–विषय– तृ ष्ण पहुँ–नाम–हा रा यो धारणे श्र म भार।
कुतृ ष्ण जगदानन्द कृ त–कल्मष कु म ति रहल का रा गार।।

२ ४

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीहरिनामका माहात्म्य

शास्त्रोंमें श्रीभगवन्नामकी महिमाका प्रचुर वर्णन पाया जाता है। यहाँ उनमेंसे कुछको उद्धृत किया जा रहा है—

नामका स्वरूप—

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य-रसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः।।१।।

(भ. र. सि. पू. वि. २, लहरी १०८)

'कृष्णनाम' चिन्तामणिस्वरूप तथा स्वयं कृष्ण चैतन्य-रस-विग्रह, पूर्ण, मायातीत एवं नित्यमुक्त है, क्योंकि नाम और नामीमें भेद नहीं हैं।।१।।

कलियुगमें नामही सर्वसिद्धिदाता है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्।।२।।

हे राजन्! कलियुग दोषराशिका खजाना है, फिर भी इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह गुण यही है कि कलियुगमें भगवान् श्रीकृष्णका सङ्कीर्त्तन करनेमात्रसे ही समस्त आसक्तियाँ छूट जाती हैं और भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।।२।।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्।।३।।

(श्रीमद्भागवत १२/३/५१-५२)

सत्‌युगमें भगवान्‌के ध्यानके द्वारा, त्रेतामें बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधिपूर्वक उनकी पूजासे जो फल मिलता है, वह कलियुगमें केवल भगवन्नामका कीर्त्तन करनेसे अनायास ही प्राप्त हो जाता है।।३।।

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्।।४।।

(पाद्मोत्तर खण्डमें ४२ अध्याय)

सत्ययुगमें ध्यानके द्वारा, त्रेतामें यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे तथा द्वापरमें परिचर्याके द्वारा जो फल प्राप्त होता है, कलियुगमें एकमात्र हरिनाम-कीर्त्तन करनेसे ही वह फल प्राप्त हो जाता है।।४।।

कलिकाले नामरूपे कृष्ण अवतार।
नाम हैते हय सर्व जगत्-निस्तार।।
नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म।
सर्वमन्त्रसार नाम एइ शास्त्र मर्म।।५।।

(चै. च. आ. १७/२२, ७/७४)

कलियुगमें श्रीकृष्ण ही नामके रूपमें अवतरित हुए हैं। नामसे ही समस्त जगत्का उद्धार होता है। कलियुगमें नामके बिना साधन व्यर्थ हैं। समस्त मन्त्रोंका सार हरिनाम है, सभी शास्त्र ऐसा ही कहते हैं।।५।।

नाम-माहात्म्य-वर्णनमें प्राचीन आचार्यवृन्द—

अंहः संहरतेऽखिलं सकृदुदयादेव-सकल-लोकस्य।
तरणिरिव तिमिर-जलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम।।६।।

(पद्यावली १६ संख्याधृत श्रीधरस्वामीकृत श्लोक)

जगन्मङ्गल हरिनामकी जय हो। जिस प्रकार सूर्य उदित होकर अन्धकारका विनाश करता है, उसी प्रकार हरिनाम एकबार मात्र उदित होनेपर लोगोंके समस्त पापोंका नाश कर देता है।।६।।

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमनसामुच्चाटनं चांहसा-
माचण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मुक्तिश्रियः।
नो दीक्षां न च सत्क्रियां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः।।७।।

(पद्यावली १८)

त्रिगुणातीत मुक्त कुलोंके चित्तके आकर्षकस्वरूप, चाण्डालसे वाक्शक्तिमान् व्यक्ति तकको सुलभ, मुक्तिरूप ऐश्वर्यको वशमें करनेवाला, ऐसा श्रीकृष्णनामस्वरूप 'महामन्त्र' जिह्वापर स्पर्श करते ही फल प्रदान करता है, दीक्षादि सत्कार्य या पुरश्चरण (मन्त्रोच्चारण) इन सबकी किञ्चित्मात्र भी अपेक्षा नहीं करता।।७।।

ब्रह्म साक्षात्कारकी अपेक्षा नामोच्चारणकी महिमा अधिक है—

यद्ब्रह्म-साक्षात्-कृति-निष्ठयापि विनाशमायाति विना न भोगैः।
अपैति नाम-स्फुरणेन तत्ते प्रारब्ध कर्मेति विरौति वेदः।।८।।

(श्रीरूपगोस्वामीकृत श्रीकृष्णनाम स्तोत्रमें ४ श्लोक)

हे नाम प्रभो! अवच्छिन्न तैलधारावत् ब्रह्म चिन्ताके द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कारकी निष्ठा प्राप्त करनेपर भी जिस प्रारब्ध कर्मको भोगना ही पड़ता है, वह

प्रारब्ध कर्म आपकी स्फूर्तिमात्रसे अर्थात् भक्तोंकी जिह्वापर स्फुरण होनेमात्रसे विनष्ट हो जाता है। इस बातको वेद उच्च स्वरसे पुनः पुनः कहते हैं।।८।।

नामकीर्त्तनकी श्रेष्ठता—

अघच्छित्–स्मरणं विष्णोर्वह्वायासेन साध्यते।
ओष्ठस्पन्दनमात्रेण कीर्त्तनस्तु ततो वरम्।।९।।

(ह. भ. वि. ११/२३६ वैष्णव चिन्तामणिवाक्य)

विष्णुका स्मरण पापोच्छेदक होनेपर भी वह प्रचुर यत्न द्वारा ही पूरा होता है। किन्तु ओष्ठ स्पन्दनमात्रसे (अनायास ही) जो विष्णुका कीर्त्तन होता है, वह स्मरणसे भी श्रेष्ठ है। (क्योंकि, इस प्रकार नामकीर्त्तन अथवा नामाभासके द्वारा ही संसार बन्धनसे मुक्त हुआ जा सकता है)।।९।।

ध्यान-पूजादिसे नामकीर्त्तनकी श्रेष्ठता—

जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारेर्विरमितनिजधर्मध्यानपूजादियत्नम्।
कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां यत् परममृतमेकं जीवनं भूषणं मे।।१०।।

(बृ. भा. १/१/९)

जिसके द्वारा निजधर्म, ध्यान और पूजादि चेष्टाका अन्त हो जाता है, ऐसे आनन्दस्वरूप मुरारीके नामकी जय हो, जय हो। यह नाम जिस किसी भी प्रकारसे लिए जानेपर (नामाभास मात्रसे ही) प्राणियोंको मुक्ति प्रदान करता है एवं यही एकमात्र परम अमृतस्वरूप है, यह मेरा जीवन एवं भूषण है।।१०।।

येन जन्मशतैः पूर्वं वासुदेवः समर्चितः।
तन्मुखे हरिनामानि सदा तिष्ठन्ति भारत।।११।।

(ह. भ. वि. ११/२३७ शास्त्रवाक्य)

हे भरतवंश श्रेष्ठ! जिन्होंने शत-शत वर्ष पूर्व जन्मोंमें उचित (सम्यग्) रूपसे वासुदेवका अर्चन किया है, उनके मुखमें ही श्रीहरिका नाम नित्यकाल विराजमान् रहता है।।११।।

नाममें देशकाल आदिका नियम नहीं है—

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा।
विद्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्त्तने।।१२।।
कालोऽस्ति दाने यज्ञे च स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे।
विष्णुः सङ्कीर्त्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीतले।।१३।।

(ह. भ. वि. ११ वि. २०६ संख्याधृत वैष्णव चिन्तामणि वाक्य)

हे राजन्! विष्णुके नाम कीर्त्तनके विषयमें कोई देश अथवा कालका नियम नहीं है, यह निसंदेहपूर्वक कहा जाता है। दान, यज्ञ और अन्यान्य जपमें काल नियमका विचार है, किन्तु इस पृथ्वीपर विष्णु नामके सङ्कीर्त्तनमें किसी भी काल और नियमका विधान नहीं है।।१२-१३।।

न देशनियमस्तस्मिन् न कालनियमस्तथा।
नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति श्रीहरेर्नाम्निलुब्धक।।१४।।

(ह. भ. वि. ११ वि. २०२, विष्णुधर्मोत्तरवाक्य)

हे लुब्धक! श्रीहरिके नाम-कीर्त्तनके विषयमें देश और कालका नियम नहीं है। उच्छिष्ट मुखसे अथवा किसी भी प्रकार अशुचि अवस्थामें भी नाम कीर्त्तन करना निषिद्ध नहीं है।।१४।।

मधुर-मधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां सकलनिगमवल्ली-सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम।।१५।।

(ह. भ. वि.-११ वि.-२३४ संख्याधृत स्कन्दपुराण वाक्य)

हरिनाम सब प्रकारके मङ्गलोंमें श्रेष्ठ मङ्गल-स्वरूप हैं, मधुरसे भी सुमधुर हैं। वे निखिल श्रुति-लताओंके चिन्मय सुपक्वफल हैं। हे भार्गवश्रेष्ठ! श्रद्धासे हो अथवा अवहेलनासे, मनुष्य यदि स्पष्ट रूपसे एकबार भी निरपराध होकर "कृष्ण" नामका उच्चारण करे, तो वह नाम उसी समय मनुष्यको तार देता है।।१५।।

सभीके लिए 'नामसङ्कीर्त्तन' साधन और साध्य है—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्।।१६।।

(श्रीमद्भागवत २/१/११)

हे राजन्! निर्वेद प्राप्त, ऐकान्तिक भक्त, स्वर्ग और मोक्ष आदिकी अभिलाषा रखनेवाले तथा आत्माराम योगियों सभीके लिए श्रीहरिके नामका पुनः पुनः कीर्त्तन तथा स्मरण करना ही परम साधन और साध्य है। पूर्ववर्ती आचार्योंने ऐसे ही स्थिर सिद्धान्तकी घोषणा की है।।१६।।

हरिनाम

भव-समुद्र बड़ा ही दुस्तर है। परमेश्वरकी कृपा बिना इसको पार करना कठिन ही नहीं, असंभव है। जीव जड़से श्रेष्ठ होनेपर भी स्वभावतः दुर्बल और पराधीन है। भगवान् ही जीवोंके एकमात्र रक्षक, पालक और त्राता हैं। जीव अणु-चैतन्य हैं, अतएव परम चैतन्य भगवान्‌के अधीन और सेवक हैं। परम चैतन्य परमेश्वर ही जीवोंके आश्रय हैं। यह जड़-जगत माया द्वारा रचित है। इस जड़-जगतमें जीवोंकी स्थिति ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार अपराधी व्यक्तिकी स्थिति कारागारमें होती है। भगवान्‌से विमुख होनेके कारण जीव मायाके संसारमें चक्कर काट रहे हैं। भगवद्-विमुख जीवोंको बद्धजीव कहते हैं; क्योंकि वे मायाद्वारा बँधे हुए होते हैं। इसके विपरीत जो जीव भगवान्‌के अनुगत होते हैं, वे मायासे मुक्त होते हैं। ऐसे जीवोंको मुक्त जीव कहते हैं। इस प्रकार अवस्था भेदसे अनन्त जीव दो भागोंमें विभक्त हैं—बद्ध जीव और मुक्त जीव।

बद्ध जीव साधन द्वारा भगवान्‌की कृपा प्राप्त कर, मायाकी सुदृढ़ रज्जुको तोड़नेमें समर्थ होते हैं। हमारे महामहिम महर्षियोंने अनेक छान-बीनके पश्चात् तीन प्रकारके साधन स्थिर किये हैं—कर्म, ज्ञान और भक्ति।

वर्णाश्रमधर्म, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, योग—इनको शास्त्रोंमें कर्माङ्ग कहा गया है। इन विभिन्न कर्मोंके भिन्न-भिन्न फल भी उन शास्त्रोंमें कहे गये हैं। उन फलोंका पृथक्-पृथक् विचार करनेपर पता चलता है कि स्वर्ग-भोग, मृत्युलोकका भोग, रोगशान्ति तथा उच्च कर्म करनेके सुअवसरकी प्राप्ति—ये ही उनके प्रधान फल हैं। इनमेंसे उच्च कर्म करनेके सुअवसरकी प्राप्ति रूप फलको पृथक् कर देनेपर शेष समस्त प्रकारके फल मायिक प्रतीत होते हैं। स्वर्ग-भोग, मर्त्यसुखभोग, ऐश्वर्य आदि फल—जिन्हें जीव कर्मद्वारा प्राप्त करते हैं—सभी नश्वर हैं। ये सभी भगवान्‌के कालचक्रमें पड़कर विनष्ट हो जाते हैं। इन फलोंके द्वारा मायाका बन्धन खुलना तो दूर रहे, इनसे और भी अधिक रूपमें कर्म वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, जो माया-बन्धनको और भी अधिक सुदृढ़ कर देती हैं। उच्च कर्मोंका सुयोगरूप फल भी निरर्थक ही होता है, यदि उच्च कर्म वास्तवमें न किये जाँय। श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार कहते हैं—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।।

वर्णाश्रम धर्मका मूल तात्पर्य यह है कि स्वभावके अनुसार सांसारिक और शारीरिक कर्मोंके विभागद्वारा मनुष्य सहजसे सहज रूपमें संसार और शरीर-यात्राका निर्वाह कर सके। ऐसा होनेसे हरिकथाके अनुशीलनके लिए पर्याप्त समय मिलेगा। यदि कोई मनुष्य वर्णाश्रम धर्मका उत्तम रूपसे पालन तो करता है, परन्तु हरि-कथामें उसकी रुचि नहीं होती, तो उसका सारा धर्मानुष्ठान व्यर्थका परिश्रम ही हो जाता है। कर्म द्वारा निश्चित रूपमें भव-समुद्रको पार नहीं किया जा सकता—इसे मैंने संक्षेपमें बतलाया।

ज्ञानको भी उच्च गति प्राप्त करनेमें साधन बतलाया गया है। ज्ञानका फल आत्मशुद्धि है। आत्मा जड़ातीत वस्तु है; परन्तु इस तत्त्वको भूलकर जीव जड़ाश्रित होकर कर्म-मार्गमें भटक रहे हैं। ज्ञान-चर्चाद्वारा यह जाना जाता है कि मैं जड़ नहीं—चिद्-वस्तु हूँ। ऐसा ज्ञान स्वभावतः 'नैष्कर्म्य' कहलाता है। इसका कारण यह है कि इसमें चिद्-वस्तुका कुछ-कुछ ज्ञान रहनेपर भी चिद्वस्तुका नित्यधर्म—जो चिदास्वादन है, प्रारम्भ नहीं होता। इस अवस्थाको प्राप्त हुए जीव आत्माराम कहलाते हैं। परन्तु जब चिदास्वादनरूप चित्क्रिया प्रारम्भ हो जाती है, तब नैष्कर्म्य नहीं रहता। इसलिए देवर्षि नारदजीने कहा है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत-भाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

अर्थात् नैष्कर्म्यरूप निर्मल ज्ञान भी भगवानकी भक्तिसे स्निग्ध न होनेपर नितांत उपेक्षणीय होता है।

श्रीमद्भागवतमें और भी कहते हैं—

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्थाऽप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः।।

परम चैतन्य हरिमें एक ऐसा असाधारण गुण है, जो समस्त जड़मुक्त आत्माराम जीवोंको भी आकर्षण कर अपनी भक्तिमें लगा देता है।

अतएव कर्म उच्च कर्मका सुअवसर प्रदान कर और ज्ञान अपना नैष्कर्म्य-स्वरूप परित्यागकर जब भक्तिसाधन करानेमें नियुक्त होते हैं, तभी कर्म और ज्ञानको साधन-अङ्ग कहा जा सकता है। उनकी स्वयं कोई साधन-अंगता स्वीकृत नहीं है। इसलिए केवल भक्तिको ही साधन कहा

गया है। कर्म और ज्ञान भक्तिके अधीन होनेपर कहीं-कहीं साधनके रूपमें माने गये हैं, परन्तु भक्ति स्वभावतः ही साधन-स्वरूप है। इस विषयमें श्रीमद्भागवतका निर्णय स्पष्ट है—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।।

हे उद्धव! कर्मयोग, सांख्योग, वर्णाश्रम धर्म, वेद-पाठ, तपस्या या वैराग्य मुझे प्रसन्न नहीं कर पाते, केवलमात्र तीव्र भक्ति ही मुझे प्रसन्न करनेमें समर्थ है।

भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए भक्तिके अतिरिक्त और कोई भी उपाय नहीं है। साधन भक्ति नौ प्रकारकी होती है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। इनमेंसे श्रवण, कीर्तन और स्मरण—ये तीन प्रधान साधनाङ्ग हैं। भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लीला—इन चारों विषयोंका ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण होता है। इनमें भी श्रीनाम ही आदि और सर्व बीज-स्वरूप हैं। अतएव हरिनाम ही सब प्रकारकी उपासनाओंके मूल हैं। शास्त्रोंमें कहते हैं—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

कलियुगमें हरिनामके अतिरिक्त जीवोंकी दूसरी गति नहीं है। 'कलिकाल' शब्द द्वारा यह समझना होगा कि सभी समयोंमें हरिनामके बिना जीवोंकी गति नहीं है। विशेष रूपमें कलियुगमें दूसरे-दूसरे मंत्रादि साधन दुर्बल होनेके कारण केवल हरिनामका ही अवलम्बन करना उचित है, क्योंकि हरिनाम सबसे बढ़कर वीर्यशाली हैं।

हरिनामके सम्बन्धमें पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा गया है—

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः।।

श्रीजीव गोस्वामी इस श्लोककी व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

एकमेव सच्चिदानन्द-रसादिरूपं तत्त्वं द्विधाविर्भूतमित्यर्थः।

श्रीकृष्णतत्त्व अद्वय सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। उनका दो रूपोंमें आविर्भाव होता है—(१) नामीके रूपमें श्रीकृष्णविग्रह तथा (२) नामके रूपमें श्रीकृष्णनाम। इसका मूलतत्त्व यह है कि श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं। शक्तिमान पुरुषके समस्त प्रकाश ही उनकी शक्तिके प्रकाश हैं। शक्ति ही अपने आधाररूप

पुरुषको दूसरेके निकट प्रकाश करती है। शक्तिके दर्शन-प्रभाव द्वारा कृष्णरूप प्रकाशित होता है और आह्वय-प्रभाव द्वारा कृष्णनाम विज्ञापित होता है। अतएव कृष्णनाम चिन्तामणि-स्वरूप, कृष्ण-स्वरूप और चैतन्य-रस विग्रह स्वरूप हैं। नाम सर्वदा पूर्णस्वरूप हैं अर्थात् उनमें विभक्तियोंके योगसे "कृष्णाय नारायणाय" इत्यादि मंत्रादि निर्माणकी अपेक्षा नहीं होती। कृष्णनाम उच्चारित होते ही चित्तत्त्वमें कृष्ण-रस अकस्मात् उदित हो पड़ता है। नाम सदा विशुद्ध होते हैं अर्थात् वे जड़ीय अक्षरोंकी भाँति जड़ाश्रय नहीं होते। नाम केवल चैतन्य रसमात्र हैं। नाम सदा मुक्त होते हैं, अतएव नित्यमुक्त हैं, वे कभी भी जड़ जिह्वा आदिसे पैदा नहीं होते। जिन्होंने नाम-रसका पान किया है, वे ही केवल इस व्याख्याको समझनेमें समर्थ हो सकते हैं। जो नाममें जड़त्वकी कल्पना करते हैं, स्वयं चैतन्यरसास्वादन करनेमें असमर्थ हैं, वे इस व्याख्यासे सन्तुष्ट नहीं हो सकते। यदि यह कहो कि हम निरन्तर जो नाम-उच्चारण करते हैं, वह जड़ीय अक्षरोंको आश्रय करके हुआ करता है; ऐसी दशामें नामको जड़से उत्पन्न वस्तु न कहकर नित्य मुक्त कैसे कहा जा सकता है? इस बहिर्मुख तर्कके उत्तरमें श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।।

प्राकृत वस्तु ही प्राकृत इन्द्रिय-ग्राह्य होती है। कृष्णनाम अप्राकृत हैं। अतएव वे कदापि प्राकृत इन्द्रियग्राह्य नहीं हैं। तब जो नाम जिह्वासे प्रकाशित होता है, वह केवल आत्माके अप्राकृत आनन्दकी तदुपयोगी इन्द्रियमें स्फूर्त्ति मात्र है। भक्त जिस समय आत्माकी अप्राकृत रसनासे कृष्णनाम उच्चारण करते हैं, उस समय वह उच्चरित परमतत्त्व प्राकृत रसनापर आविर्भूत होकर नृत्य करने लगता है। आनन्दसे हास्य, स्नेहसे क्रन्दन, प्रीतिसे नृत्य जिस प्रकार अप्राकृत रसकी इन्द्रियों तक व्याप्ति होती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णनाम-रसकी रसना तक व्याप्ति होती है। प्राकृत रसनासे कृष्णनाम उत्पन्न नहीं होता। साधन कालमें जिस नामका अभ्यास किया जाता है, वह यथार्थ नाम नहीं है। उसे छायानाम अथवा नामाभास कहा जा सकता है। नामाभास करते-करते क्रमोन्नति द्वारा बहुधा अप्राकृत नाममें रुचि होती देखी गयी है। वाल्मीकि और अजामिलके जीवन-चरित्र इस विषयमें ज्वलंत दृष्टान्त हैं।

जीवकी नाममें रुचि न होनेका कारण अपराध है। जो अपराध-रहित होकर कृष्णनाम ग्रहण करते हैं, उनके हृदयमें चैतन्यरस-विग्रहरूप अप्राकृत श्रीहरिनामका उदय होता है। अप्राकृत नामका उदय होनेपर हृदय प्रफुल्लित हो उठता है, नेत्रोंसे अश्रुधारा-प्रवाहित होने लगती है तथा शरीरमें सात्त्विक विकार पैदा होने लगते हैं। अतएव श्रीमद्भागवतमें ऐसा कहा गया है—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः।।

जीव जिस समय हरिनाम ग्रहण करते हैं, उस समय उनका हृदय निश्चित रूपमें विकृत होगा, आँखोंसे निश्चय ही अश्रुधारा प्रवाहित होगी तथा शरीरमें अवश्य ही रोमांच होगा। जो कृष्णनाम उच्चारण तो करते हैं, परन्तु उनमें ऐसे विकार लक्षित नहीं होते, उनका हृदय अपराधके कारण अतिशय कठोर हो चुका है—ऐसा समझना चाहिए।

निरपराध होकर हरिनाम लेना साधकका नितांत कर्तव्य है। अतएव अपराधसे बचनेके लिए अपराध कितने प्रकारके हैं, इसका ज्ञान होना आवश्यक है।

शास्त्रोंमें हरिनामके सम्बन्धमें दस प्रकारके अपराधोंका उल्लेख है—(१) साधु-निन्दा, (२) शिव आदि देवताओंको भगवान्‌से पृथक् स्वतंत्र मानना, (३) गुरुकी अवज्ञा करना, (४) वेदादि सत्-शास्त्रोंकी निन्दा करना, (५) हरिनाम-माहात्म्यको केवलमात्र प्रशंसा समझना, (६) हरिनाममें अर्थ कल्पना अर्थात् कृष्ण, राम आदि नाम कल्पित हैं, ऐसी धारणा रखना, (७) नामके बलपर पाप करना, (८) दूसरे-दूसरे शुभ कर्मोंके साथ हरिनामको समान समझना, (९) अश्रद्धालु व्यक्तिको हरिनामका उपदेश करना और (१०) नामका माहात्म्य श्रवण करके भी उसके प्रति अविश्वास रखना।

साधुभक्तोंके प्रति अश्रद्धा प्रकाश करनेसे तथा साधु-चरित्र महाजनोंकी निन्दा करनेसे हरिनामके प्रति अपराध होता है। अतएव जो हरिनामका आश्रय ग्रहण करेंगे, उनको सर्वप्रथम वैष्णव-अवज्ञाकी प्रवृत्तिको सर्वतोभावेन परित्याग करना चाहिए। वैष्णवोंके कार्योंके प्रति सन्देह होनेपर साथ-ही-साथ निन्दा न करके उसका तात्पर्य अनुसंधान करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। अतएव साधुजनोंके ऊपर श्रद्धा करना ही कर्त्तव्य है।

शिव आदि देवताओंको भगवान्‌से पृथक् समझना नामापराध कहा गया है। भगवत् तत्त्व एक और अद्वितीय है। शिव आदि देवताओंकी भगवान्‌से

पृथक् स्वतंत्र कोई सत्ता नहीं है। शिव आदि देवताओंको भगवान्का गुणावतार अथवा भगवद्भक्त मानकर सम्मान करनेसे भेदज्ञान नहीं रहता। जो लोग महादेवको एक पृथक् अर्थात् स्वतंत्र देवता मानकर शिव और विष्णुकी पूजा करते हैं, वे महादेवकी भगवत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। इससे वे विष्णु और शिव दोनोंके प्रति अपराधी हो पड़ते हैं। जो हरिनाम करते हैं, उनको इस प्रकारके भेद-ज्ञानका भली प्रकार त्याग करना चाहिए।

गुरुदेवकी अवज्ञा करना एक नामापराध है। जो नाम-तत्त्वकी सर्वोत्तमताकी शिक्षा देते हैं, उनको आचार्यरूपी भगवत्-प्रेष्ठ समझना चाहिए। उनके प्रति दृढ़भक्ति करके हरिनाममें अचला श्रद्धा प्राप्त करनी चाहिए।

कदापि सत्शास्त्रोंकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। वेदादि शास्त्रोंमें भागवत धर्मका वर्णन है—श्रीनामका बहुत ही माहात्म्य बतलाया गया है। उन शास्त्रोंकी निन्दा करनेसे हरिनामापराध होता है। वेद आदि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही हरिनामका माहात्म्य बतलाया गया है—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।।

इस प्रकारके सत् शास्त्रोंकी निन्दा करनेसे हरिनाममें किस प्रकार प्रीति हो सकती है?

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि वेदादि शास्त्रोंमें हरिनामका जो माहात्म्य वर्णन किया गया है, वह केवल नामकी प्रसंशामात्र है। जिनकी ऐसी धारणा है, वे नामापराधी हैं। ऐसे लोग हरिनाम करके भी हरिनामका वास्तविक फल प्राप्त नहीं कर पाते। ऐसे लोग यह समझते हैं कि जिस प्रकार कर्मकाण्डमें रुचि उत्पन्न करनेके लिए कर्मकाण्डकी बढ़ा चढ़ाकर प्रशंसा की गयी है, उसी प्रकार शास्त्रोंमें हरिनामकी भी बढ़ा-चढ़ा कर फल-श्रुति दी गयी है। ऐसा समझनेवाले बड़े दुर्भागे हैं। इसके विपरीत भाग्यवान् व्यक्तियोंका विश्वास इस प्रकार होता है—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्।।

संसारसे निर्वेद प्राप्त सब प्रकारके भयोंसे छुटकारा पानेकी इच्छा रखने वाले योगीके लिए हरिनामका कीर्तन ही एकमात्र कर्तव्य है—ऐसा विश्वास करनेवाले व्यक्ति ही हरिनामका वास्तविक फल प्राप्त करते हैं।

नामाभास और नामका भेद नहीं समझकर कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि नाम अक्षरमय है। अतएव श्रद्धा नहीं रहनेपर भी नाम लेनेसे फल होगा ही। वे लोग अजामिलका दृष्टान्त देते हैं तथा "सांकेत्यं पारिहास्यं वा" आदि शास्त्र-वचनोंका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यह बात तो पहले ही बतलायी जा चुकी है कि हरिनाम चैतन्यरसविग्रह हैं तथा प्राकृत इन्द्रियग्राह्य नहीं हैं। अतएव निरपराध होकर नामाश्रय नहीं करनेसे नामका फलोदय सम्भव नहीं है। जो अश्रद्धापूर्वक नामोच्चारण करते हैं, उनके लिए नामका फलोदय सम्भव नहीं है। अश्रद्धालु व्यक्तियोंके नामोच्चारणका फल यह होता है कि कुछ दिनोंमें उनकी नामके प्रति श्रद्धा पैदा हो सकती है। इसलिए अश्रद्धापूर्वक अर्थवाद करके नामको जड़ात्मक अक्षररूपमें जो कर्मकाण्डका अङ्ग समझते हैं अथवा ऐसा ही प्रचार करते हैं, वे नितान्त बहिर्मुख और नामापराधी हैं। वैष्णवजन इस अपराधका यत्नपूर्वक वर्जन करेंगे।

कुछ लोग हरिनामाश्रय करके ऐसा समझते हैं कि हमने अब समस्त प्रकारके पापोंसे मुक्त होनेके लिए एक सस्ती औषधि प्राप्त कर ली है। इस विश्वासके साथ वे ठगी, राहजनी, डकैती, चोरी या बदमाशी आदि पाप कर्मोंको करके फिर हरिनाम कर लेंगे, जिससे उनके सारे पाप कट जायेंगे। ऐसा समझने वाले व्यक्ति नामापराधी हैं। जो लोग नामाश्रय करते हैं, वे एक बार चिद्रसका आस्वादन कर फिर कभी भी जड़ीय असत् वस्तुओंमें आसक्त नहीं होते।

कुछ लोगोंका ख्याल ऐसा होता है कि यज्ञ आदि कर्म, दानादि धर्म, तथा तीर्थ यात्राकी चेष्टाएँ—ये सब जिस प्रकार शुभकर हैं, नाम भी वैसी ही कोई चीज है। ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं। नाम सदा चिद्रसस्वरूप हैं। अन्यान्य समस्त सत्कर्म ही जड़मय हैं। अतएव वे नामके विजातीय हैं। जो लोग इन क्रियाओं या सत् कर्मोंको नामके समान समझते हैं, वे वास्तवमें नामरसका आस्वादन नहीं कर सकते हैं। जिस प्रकार हीरा और काँचमें भेद है, ठीक उसी प्रकार हरिनाम और दूसरे-दूसरे शुभ कर्मोंमें वस्तुगत भेद है।

अश्रद्धालु व्यक्तियोंको हरिनामका उपदेश या मंत्र देनेवाले व्यक्ति नामापराधी हैं। जिस प्रकार शूकरको मुक्ताफल देनेसे कुछ लाभ नहीं होता, उलटे

मुक्ताफलका ही अपमान या अवज्ञा करना हो जाता है, उसी प्रकार जिन लोगोंमें हरिनामके प्रति उपयुक्त श्रद्धाका अभाव है, उनको नामोपदेश करना नितांत अन्याय है। ऐसे लोगोंको हरिनामके प्रति किस प्रकारसे श्रद्धा हो, इसके लिए प्रयत्न करना उचित है। श्रद्धा होनेके बाद नामोपदेश करना उचित है। जो लोग अपनेको गुरु अभिमानकर अपात्रको भी हरिनामका उपदेश करते हैं, वे नामापराधके कारण अधःपतित हो जाते हैं।

हरिनामका माहात्म्य श्रवण करके भी जो नामके प्रति ऐकान्तिक श्रद्धा न करके अन्यान्य साधनोंका—कर्म, ज्ञान या योगका आश्रय त्याग नहीं करते, वे भी नामापराधी हैं।

इस प्रकार नामापराध वर्जन नहीं करनेसे हरिनाम उदित नहीं होते। कलियुग-पावनावतारी श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने संसारी जीवोंके नाना प्रकारके दुःखोंको देखकर दयार्द्रचित्तसे ऐसा उपदेश दिया है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

अपनेको तृणसे भी तुच्छ मानकर, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होकर स्वयं अभिमान-शून्य और दूसरोंको मान देनेवाला बनकर जीव हरिनाम-संकीर्तनमें अधिकार प्राप्त करता है। व्यवहार शुद्धिके साथ हरिनाम ग्रहण करनेकी व्यवस्था ही इस वाणीका मुख्य तात्पर्य है। जो अपनेको सबसे अधिक दीन-हीन समझते हैं, वे कभी भी साधुकी निन्दा, शिव आदि देवताओंकी भेदबुद्धि द्वारा अवज्ञा, गुरुकी अवज्ञा एवं सत्-शास्त्रोंकी निन्दा नहीं कर सकते तथा हरिनामके माहात्म्यके प्रति उनके हृदयमें कभी संदेह उत्पन्न नहीं हो सकता। वे शुष्कज्ञानजात तर्क द्वारा 'हरि' शब्दमें निगुर्ण-ब्रह्मवादकी कल्पना नहीं करते, नामके बलपर पाप-कर्म नहीं करते, दूसरे सत्कर्मोंके साथ हरिनामको समान नहीं मानते, अश्रद्धालु व्यक्तियोंको हरिनाम नहीं देते तथा नामके प्रति तनिक भी अविश्वास नहीं रखते। वे स्वभावतः दस प्रकारके नामापराधोंसे दूर रहनेकी चेष्टा करते हैं। किसीके उपहास करनेपर अथवा अहित करनेपर भी वे उसका उपकार ही करते हैं। वे जगतका समस्त कार्य करनेपर भी स्वयं अपनेमें भोक्ता या कर्ताका अभिमान नहीं रखते। वे अपनेको जगतका दास मानकर जगतकी सेवामें ही लगे रहते हैं।

ऐसे अधिकारी व्यक्तिके मुखसे जब हरिनाम उच्चरित होता है, तब अन्तःस्थित चिज्जगतसे बिजलीकी भाँति चित् ज्योति व्याप्त होकर जगतके जीवोंके मायाविकाररूप अन्धकारको दूर कर देती है। अतएव, महात्माओं! अपराध-रहित होकर निरन्तर हरिनामका कीर्तन कीजिए। हरिनामके बिना जीवोंके लिए और कोई भी दूसरा सहारा नहीं है। इस दुस्तर भव-समुद्रमें डूबते हुए व्यक्तिको ज्ञान या कर्म आदिका सहारा लेना केवल तृणका सहारा लेकर महासागरको पार करनेकी इच्छाकी भाँति सर्वथा निरर्थक है। अतः हरिनामरूप महापोत (बड़ा जहाज) का अवलम्बन करके इस दुस्तर भव-समुद्रको पार कीजिए।

—जगद्गुरु श्रीभक्तिविनोद ठाकुर